ओ३म्

भूमिका

किसी जाति के सामाजिक बलका निर्भर उस जाति की आन्तरिक गठित पर है। इस आन्तरिक गठित की परीक्षा यह है कि किस अवधि तक वह अपने व्यक्तियों की रक्षा करती है और कहां तक उसके विभिन्न व्यक्तियों में पारस्परिक प्रेम और न्यायाचरण है। प्रत्येक जाति में कुछ समुदाय होते हैं जिनके समुदाय का नाम जाति है। जाति के आन्तरिक गठित की यह परीक्षा है कि इन समुदायों में कहां तक समष्टिरूप से कार्य्य करने की शक्ति है। और कहांतक वे भिन्न भिन्न समुदाय ऐसे कार्य्य करने के लिये एकत्र होजाने के लिये उद्यत हैं। जिन कार्यों का समुदाय विशेषण किसी व्यक्ति वा समुदाय से नहीं है किन्तु समग्र जाति से है। दूसरे शब्दों में यह कहो कि जाति के सामाजिक बल का परीक्षण यह है कि कहांतक उस जाति के विभिन्न समुदाय और पृथक् पृथक् व्यक्ति अपनी जाति के अन्य समुदायों व्यक्तियों की अन्य जाति के समुदायों एवं व्यक्तियों से रक्षा करने की रुचि रखती हों यह बात स्वाभाविक है कि एक समुदाय की व्यक्तियों को उसी समुदायकी व्यक्तियों की अपेक्षा इतर समुदायोंकी व्यक्तियों से अधिक स्नेह हो संसार का यह नियम है कि जितना किसी का दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध होगा उतना ही उसका अधिक स्नेह होगा। अतः एक कुटुम्ब की व्यक्तियां परस्पर

अधिक स्नेह रखती हैं उस प्रेम की अपेक्षा जो उनका दूसरे परिवार के लोगों के साथ है। इसमें कोई दोष नहीं परन्तु यह आवश्यक है कि एक जाति के विविध समुदायों में परस्पर अधिक प्रेम और सम्बन्ध हो। उस सम्बन्ध से जो उनको अन्य जातियों के समुदायों से सम्बन्ध है हम दृष्टान्त से इसको अधिक स्पष्ट कर देते हैं। आप ऐसा अनुमान करें कि एक जाति का नाम 'क' है दूसरी का नाम 'ख' और तीसरी का नाम 'ग' है। 'क' में १० समुदाय सम्मिलित है। 'ख' में ६ हैं और 'ग' में १२ हैं। इनमें से प्रत्येक जाति के सामाजिक बल का निर्भर इस बात पर है कि उसके भिन्न २ समुदायों में कहां तक अपनी अपनी जाति के विभिन्न समुदायों की सहायता की रुचि है। जैसे यदि 'क' जाति के समुदायों में इतना प्रेम नहीं कि वह 'ख' जाति से अपनी जाति के समुदायों की अपेक्षा अधिक प्रेम कर सकें, तो समझना चाहिये कि 'क' जाति के सामाजिक बल पर भरोसा नहीं हो सकता। यदि 'ख' जाति के विभिन्न समुदायों में परस्पर प्रेम और सम्बन्ध अधिक है तो उसमें 'क' जाति की अपेक्षा सामाजिक बल अधिक है।

एक जाति के भिन्न २ समुदाय यदि कभी २ लड़ते हैं या उनमें मत भेद होता है या वे परस्पर कटाक्ष करते हैं तो यह कुछ चिन्तास्पद नहीं। (यद्यपि हम यह नहीं कहते कि ऐसा करना प्रशंसनीय है वा ऐसा होना चाहिये परन्तु संसार में प्रायः देखा जाता है इसको मानकर विचारना चाहिये) परन्तु उनके जाति हित की परख और उनकी जाति के सामाजिक बल की परख यह है कि जब उनकी जाति के किसी समुदाय को किसी दूसरी जाति के सामने सहायता की आवश्यकता हो

तो वह उदारता से उन्हें सहायता देता है वा नहीं। इङ्गलिस्तान के रहने वालों के अनेक समुदाय हैं जो आपस में समय समय लड़ते और झगड़ते हैं। ये समुदाय धार्मिक और राजनैतिक दोनों प्रकार के हैं। इङ्गलैण्ड निवासियों का सामाजिक बल महान् है क्योंकि उनके भिन्न भिन्न समुदायों में अपने देश और जाति का प्रेम इतना बढ़ा हुआ है कि आपस में लड़ते और झगड़ते हुए भी उनको अपने समुदायों और व्यक्तियों से दूसरी जातियों और व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रेम है। इङ्गलिस्तान में ईसाई मत दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त है। प्रोटेस्टेंट और रोमन कैथलिक प्रोटेस्टेण्ट में असंख्यात फिर्के हैं। वे प्रायः परस्पर लड़ते झगड़ते रहते हैं। पर उन की गठित की परख यह है कि वे रोमन कैथलिक श्रेणी की प्रतिद्वन्दता में जहां कोई मत सम्बन्धी विवाद उपस्थित हो। तो झट इकट्ठे होजाते हैं। और (No Popery) नो पोपरी की ध्वनि चारों ओर से उठाने लगते हैं। इसी प्रकार इङ्गलैण्ड की पूर्वोक्त दोनों श्रेणियां राजनैतिक भाव से परस्पर एकत्र हो जाती हैं। जब कभी इङ्गलैण्ड का फ्रांस के साथ विवाद हो। या यदि फ्रांस में रोमन कैथलिक अधिक हैं और इङ्गलैण्ड में प्रोटेस्टेंट।

हमारे मुसलमान भाइयों में प्रथम संख्या की गठित विद्यमान है। यद्यपि द्वितीय संख्या की नहीं। मुसलमानों के सब फिर्के एक दूसरे के साथ लड़ते और झगड़ते रहते हैं परन्तु मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सामना करने में उनमें पारस्परिक अधिक प्रेम है। और वे झट इकट्ठे हो जाते हैं। हिन्दुओं की सामाजिक निर्बलता का मूल

कारण इस प्रेम का अभाव है। इस प्रेम के अभाव के कारण वे नियम हैं जिन पर पौराणिक समय में वर्ण व्यवस्था डाल दी गई। किसी समाज में सामाजिक गठन नहीं रह सकती यदि उसके समाज के व्यक्तियों में न्याय और प्रेम का व्यवहार न हो परिवारों जातियों और समुदायों के गठन का आधार प्रेम और न्याय होना चाहिये। जिस परिवार के लोगों में आपस में न्याय का वर्ताव न होगा, उसमें प्रेम नहीं रह सकता। इसी प्रकार किसी समाज के माननीय पुरुष या लीडर या बड़े लोग अपने छोटे भाइयों के साथ अन्याय का व्यवहार करें और अपनी शक्ति, बल पराक्रम और नेतृत्व (लीडरशिप) को अन्याय से वर्त्तें तो उस समाज में कभी मेल और प्रेम नहीं रहता।

यह सच है कि प्रेम एक मृदुल चित्ताकर्षक भाव है अर्थात् (Amotion) या (Possion) हैं ऐसे प्रेम के भावों में हिसाब का काम नहीं होता ये प्रायः बे हिसाब होते हैं। परन्तु याद रखना चाहिये कि यह बे हिसाब प्रेमभाव परिमित समय तक अपना प्रभाव रख सकता है। यदि इस सद्भाव से कोई पुरुष अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करे और इसको अपनी आड़ बना कर दूसरे पुरुषों के साथ अन्यायाचरण करे तो प्रेम का भाव घृणा के भाव में परिवर्त्तित हो जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि अत्यन्त प्रेम के स्थान में अत्यन्त घृणा और द्वेष आ उपस्थित होते हैं।

वह प्रेम चिरस्थायी होता है जो न्यायाचरण पर निर्धारित हो वा यों कहो कि जिसको किसी एक मनुष्य के अन्याय या अत्याचार या अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से हानि

पहुँचाने की कम सम्भावना हो। दो मित्रों और सम्बन्धियों में जब तक न्याय और सद्व्यवहार का आचरण होता है तब तक उनके प्रेम में विघ्न पड़ने के अवसर बहुत कम होते हैं। चुगली करने वालों को और फूट की आग सुलगाने वालों को ऐसी सुगमता से कृतकार्यता नहीं होती जैसी उस समय होती है जब कि मित्रों और सम्बन्धियों के परस्पर व्यवहार में न्याय न रहे या कम हो जाय। और उसके स्थान में स्वार्थान्धता अन्याय और अत्याचार का प्रवेश हो जावे जिस प्रकार यह प्रेम व्यक्तियों के प्रेम पर घटता है उसी प्रकार से यह समुदायों के परस्पर सम्बन्ध पर ठीक उतरता है।

परिवार में लड़ाई हो जाती है और ईर्ष्या, और फूट का अग्नि प्रचण्ड हो जाता है जब कि उनके पारस्परिक व्यवहार से न्याय का तिरोभाव हो जाता है नियम यह है कि जिस सीमा या जिस अवधि तक मनुष्यों मनुष्यों, समाजों और समाजों, वर्णों और वर्णों के अन्दर न्यायाचरण रहेगा उसी अवधि तक उनमें परस्पर प्रेम होगा और उसी अवधि तक इन में विपरीत शक्तियों के साथ सफलता से संग्राम करने की शक्ति होगी।

मैंने ऊपर वर्णन किया है कि हिन्दुओं में सामाजिक निर्बलता का कारण वर्णों का वर्णों के साथ अन्यायाचरण है। जिस नियम पर पौराणिक समय में वर्ण व्यवस्था स्थापित की गई उस नियम पर कभी सम्भव न था कि उनमें सामाजिक अथवा जातीय प्रेम और समष्टिबल रह सके। और इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि ऐसा ही हुआ

और इस समय भी यही दृश्य हमारी आंखों के सामने विद्यमान है।

हिन्दुओं की वर्त्तमान प्रणाली में उच्च वर्णों को नीच वर्णों पर वे अधिकार दिये गये हैं और नीच जातियों पर वे अत्याचार ठीक समझे गये हैं जिनके कारण इनमें प्रेम का रहना असम्भव है? जिस सामाजिक व्यवस्था में स्वकीय बुद्धिमत्ता, सुजनता तथा गुण सम्पन्नता को कोई स्थान न हो, जिस व्यवस्था में जन्म से एक नीच श्रेणी के मनुष्य को अपनी स्वकीय गुण सम्पन्नता से उच्चपद पाने का अवसर न मिल सकता हो वह व्यवस्था सर्वथा प्रकृति के नियमों के विरुद्ध और अस्वाभाविक है, इसका आधार ऐसे अन्याय पर है जो उन्नति और सामाजिक बल की जड़ों को काटने वाला है। हिन्दु समाज की वर्त्तमान सामाजिक नियमावली के अनुकूल एक शूद्र चाहे कितना ही विद्वान्, गुण सम्पन्न, धनाढ्य और धर्मात्मा क्यों न हो जावे परन्तु हिन्दुओं में उसका सामाजिक स्थान शूद्र पद से उच्च नहीं हो सकता और हिन्दु बिरादरी में सर्वदा उसपर एक अनपढ़ मूर्ख विद्वान् निर्धन पापात्मा, और दुराचारी द्विज को उत्कृष्टता मिलती रहेगी।

यह एक घोर अत्याचार है और ऐसे अन्याय के होने पर हिन्दु जाति के भिन्न २ विभागों में कभी प्रेम नहीं हो सकता और प्रेम के बिना वह सामाजिक गठित नहीं हो सकती जिस पर सामाजिक बल का आधार है।

सभ्य दुनियां में यह नियम है कि यदि एक विद्वान् कोई अपराध करे तो उसका अपराध एक मूर्ख और अवि-

हान की अपेक्षा अधिक घृणित समझा जाता है, जैसे यदि कोई धनाढ्य मनुष्य चोरी करे तो उसका यह कर्म्म एक उस की मनुष्य की अपेक्षा घोरतर है जिसने भूखे मरते चोरी की—परन्तु हिन्दु वर्ण प्रणाली में ठीक इस के प्रतिकूल है, चोरी करने वाला शूद्र चोरी करने वाले ब्राह्मण से सैकड़ों गुणा दण्ड का भागी समझा गया, अधिकाराभिमानी और राज के बल से अन्ध हुई जातियें (Imperial races) अपनी पराजित प्रजा पर (Subject races) ऐसा अन्याय करें तो करें परन्तु अन्याय को ठीक मानने वाली जातियें बहुत दिनों तक संसार में सुखी नहीं रहती। इस दशा में यह कैसे हो सकता है कि एक ही जाति के भिन्न २ भागों में अन्यायाचरण हो और इस का बुरा परिणाम न निकले यही अन्यायाचरण है जिसने हिन्दुओं को यह दिन दिखाया है यही अन्याय और अत्याचार है जिसने हिन्दुओं को दूसरे आक्रमण करने वालों के सामने पराजित किया, यही निष्ठुरता और अत्याचार है जिस ने हिन्दुओं को पारस्परिक फूट से इतना निर्बल कर दिया कि प्रत्येक मनुष्य आज उन पर लात मार रहा है; हंसी उड़ाता है और इन को घृणा की दृष्टि से देखता है। जिस जाति के भिन्न २ समुदायों में इस प्रकार का अन्याय और अत्याचार ठीक माना गया हो उस जाति में पारस्परिक प्रेम और गठन का होना असम्भव है।

यह भी याद रखना चाहिये कि अत्याचार करने वाला भी हरा भरा नहीं होता थोड़े दिन तक चाहे वह फलता रहे और वह अपने अत्याचारों के बुरे फलों से अनभिज्ञ रहे

परन्तु वास्तव में अत्याचार करने वाला उस मूर्ख के सदृश है जो स्वयमेव अपने बल के अभिमान में अपने पैरों पर कुल्हाड़ा चलाता है।

ज़ालिम को जब ज़ुल्म करने का स्वभाव पड़ जाता है तो वह दूसरों को छोड़ कर अपने निकटवर्त्ती मित्रों तथा सम्बन्धियों पर ही ज़ुल्म करना आरम्भ कर देता है। उसका सिर चकरा जाता है और वह यह समझता है कि परमात्मा की सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि उसके सामने सिर झुकावेः—

और इसकी आज्ञाओं का बिना ननुनच के पालन करे [यही कारण है कि शूद्रों पर अत्याचार करते २ हिन्दुओं की उच्च जातियों ने महिलागण पर जिन में उन की माताएं, भगिनियें और पुत्रियां हैं। अत्याचार करना आरम्भ कर दिया—इस द्विविध अत्याचार का फल आज हिन्दू जाति सहन कर रही है क्योंकि जिस मनुष्य का स्वयं ज़ुल्म करने का स्वभाव हो जाता है उस का शनैः २ दूसरों के हाथों से भी ज़ुल्म सहन करने का स्वभाव बन जाता है। वह समझने लगता है कि जैसा मुझे अपने से छोटों पर या अपने आधीनों पर ज़ुल्म करने का अधिकार है वैसा ही औरों को जो मेरे से अधिक बलवान् और बड़े हैं मुझ पर ज़ुल्म करने का अधिकार है, ज़ुल्म करने वाला संसार में ज़ुल्म का ऐसा प्रवाह चला देता है जिस से मनुष्य जाति को बड़ी हानि पहुंचती है और संसारमें दुःख बढ़ जाता है इसी वास्ते नीतिज्ञ पुरुषों ने कहा है कि ज़ुल्म को सहन करने वाला भी उसी अवधि तक सच्चे सामाजिक नियमों का विरोधी और

अपराधी है जैसा ज़ुल्म करने वाला। जिस प्रकार ज़ुल्म करने वाले का कोई हक नहीं है कि वह दूसरे पर ज़ुल्म करे इसी प्रकार जिस मनुष्य पर ज़ुल्म करने की चेष्टा की जाती है उस का भी कोई हक नहीं है कि अपने ऊपर ज़ुल्म होने दे। प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म्म है कि न वह दूसरों पर ज़ुल्म करे और न अपने ऊपर दूसरों को ज़ुल्म करने दे। संसार का प्रबन्ध धर्म्मानुसार और न्यायानुकूल तब ही स्थिर रह सकता है जब प्रत्येक मनुष्य अपने हक पर स्थित रहे और धर्म्मानुकूल अपने कर्त्तव्य का पालन करे न स्वयं किसी के अधिकार पर हस्ताक्षेप करे और न किसी दूसरे को अपने अधिकार पर हस्ताक्षेप करने दे। शूद्रों ने द्विजों के ज़ुल्म सहने से द्विजों को उतनी ही हानि पहुंचाई जितनी अपने आपको, इस भाव से ज़ुल्म करने वाला और ज़ुल्म सहन करने वाला दोनों ही अपराधी हैं, दोनों एक सच्चे सामाजिक नियम को तोड़ते हैं। दोनों ही सामाजिक नियम के विरुद्ध चलते हैं।

जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे घृणित हों कि दूसरे समुदाय के लोग उनके दर्शन मात्र से पापी हो जाते हैं, जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसे तुच्छ और पादाक्रान्त हों कि एक समुदाय के लोग आप चाहे कितने ही मैले, अपवित्र और दुष्ट क्यों न हों परन्तु दूसरे समुदाय के स्वच्छ, पवित्र और धर्म्मात्मा मनुष्यों से छूना भी पाप समझें, जिस जाति में एक समुदाय के लोग ऐसी घृणा से देखे जावें कि उन के किसी विशेष रास्ते पर चलने से वह रास्ता और सड़क ही अपवित्र हो जाती हो जिस समुदाय में बाप दादा

के अपराध का दण्ड उसकी सन्तान को मिलता हो, जिस समुदाय में एक मनुष्य को अपनी सुजनता और गुण सम्पन्नता से सामाजिक अवस्था में उन्नत होने का कोई अवसर न हो, उस जाति में कभी जातीय वल नहीं आ सकता और न उस की भिन्न २ व्यक्तियों और समुदायों में पारस्परिक प्रेम हो सकता है। हिन्दुओं की ऊंची जातियों ने इस जुल्म और सख्ती को यहां तक पहुंचा दिया कि वे अपने भाइयों को दूसरों की अपेक्षा भी अधिक घृणा की दृष्टि से देखते हैं, हिन्दुओं की ऊंची जातियां नीच जातियों से वर्ताव भी करना नहीं चाहतीं जो वे मुसलमानों तथा ईसाइयों से करती हैं मुसलमानों और ईसाइयों को हिन्दुओं के कुओं से पानी भरने की आज्ञा है परन्तु शूद्रों को नहीं, दक्षिण में ईसाइयों और मुसलमानों को सारी सड़कों पर फिरने का अधिकार है परन्तु शूद्रों को नहीं, मुसलमान और ईसाई हिन्दुओं के मन्दिरों में दर्शक वन कर जा सकते हैं परन्तु शूद्र नहीं, मुसलमान और ईसाइयों से हिन्दु हाथ मिलाते हैं वो प्रायः उन से हाथ मिलाने में अपना सौभाग्य समझते हैं परन्तु हिन्दु शूद्रों से ऐसा वर्ताव करने से वे पतित हो जाते हैं। विचित्र वात यह है कि इन शूद्रों को हिन्दुओं की ऊंची जातियां उस ही समय तक घृणा की दृष्टि से देखती हैं जिस समय तक वे हिन्दु रहते हैं परन्तु उन्हीं शूद्रों से वे अच्छा वर्ताव करने लग जाती। ज्योंही कि वे अपना धर्म्म त्याग कर मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं, इस का प्रत्यक्ष यही अभिप्राय है कि एक मुसलमान या ईसाई हुआ २ शूद्र हिन्दु शूद्र की अपेक्षा अच्छे सलूक का पात्र है। जिस जाति के भिन्न

त्रिभागों में ऐसा सलूक हो और ऐसे २ अत्याचारों को ठीक समझा जावे उस में जब तक इन अत्याचारों को दूर न किया जावे एकता होनी असम्भव है।

इस वास्ते हिन्दुओं की ऊंची जातियों का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे अपने अभिमान तथा अस्मिता को कम करके इस अन्याय को दूर करें। प्राचीन शास्त्रों के पढ़ने तथा पुराने इतिहास के देखने से विदित होता है कि प्राचीन आर्य्य ऐसे ज़ालिम न थे। उस समय शूद्रों को अपनी स्वकीय योग्यता सुजनता तथा धर्म्म भाव से उच्चपद को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था, और बहुतों ने यह उच्चपद प्राप्त भी किया। इसी प्रकार द्विज लोग भी अपनी अयोग्यता, क्षुद्रता और अधर्म्म से नीच अवस्था को पहुंच जाते थे, क्योंकि यही न्याय था। इस पुस्तक में पुराने शास्त्रों के प्रमाणों और पुराने इतिहास से यह दर्शाया गया है कि प्राचीन समय में जात पांत के बन्धन ऐसे कड़े न थे जैसे अब हैं और उनकी बुनियाद गुण कर्म्म और स्वभाव पर थी, यदि हिन्दुओं की यह इच्छा है कि शूद्र हिन्दु समाज के अन्दर बने रहें और उनसे निकल कर मुसलमान या ईसाई न हो जावें तो उनको अवश्यमेव यह करना होगा कि वे शूद्रों को धार्मिक शिक्षादें और उन में ऐसा धार्मिक बल उत्पन्न करें जिनसे वे जाति के दूसरे विभागों के सदृश धर्मात्मा बन कर जाति और धर्म्म की रक्षा करने के काम में भाग लेसकें।

धर्म्म किसी मनुष्य का दाय भाग नहीं है। कुछ धार्मिक संस्कार चाहे किसी मनुष्य को दाय भाग में मिल जावें परन्तु बहुत करके धर्म्म प्रत्येक मनुष्य की अपनी कमाई है इस वास्ते

प्रत्येक मनुष्य का यह हक है कि वह जितना धर्म, धन चाहे कमावे, किसी को कोई अधिकार नहीं कि वह धर्म का द्वार किसी दूसरे पर बन्द करदे।

जिस धर्म के प्रचारक अपने धर्म का द्वार किसी मनुष्य पर बन्द कर देते हैं केवल इस कारण से कि वह एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुआ है जो उनकी दृष्टि में नीच और शूद्र है वे प्रचारक अपने धर्म को धर्म के सिंहासन से गिराते हैं और उसका अपमान और उसकी हानि करते हैं।

जिस प्रकार परमात्मा का द्वार सारी सृष्टि के लिए खुला है और प्रत्येक मनुष्य अपने मन को उनके चरणों में समर्पण करने से जात पांत रंग रूप की विवेचना के विना उनके पास पहुंच सकता है उसी प्रकार धर्म जो परमात्मा का स्वरूप है या परमात्माके स्वरूप जानने का साधन है सबके लिए खुला होना चाहिये जो चाहे उससे लाभ उठावे, उन मनुष्यों में जो जन्म, या जाति रक्त अभिमान में उन्मत्त हैं सच्चे धार्म्मिक भाव नहीं आसकते सच्चे धार्म्मिक भाव वाले मनुष्य में किसी हद्द तक अपनी सच्चाई और स्वकीय सुजनता का अभिमान हो सकता है जिसको अंग्रेज़ी में सैल्फ रेस्पैक्ट (Self-respect) कहते हैं परन्तु उसमें जन्म या जाति या रक्त या धन का अभिमान नहीं हो सकता। ऐसा अभिमान धार्म्मिक भाव का विरोधी है।

जातीय उन्नति के एक और नियम का मैं यहां प्रकाश करना चाहता हूं वह यह है कि जातीय बल के वास्ते आवश्यक है कि उस में अति ऊंचे या अति धनाढ्य मनुष्य कितने ही हों परन्तु अति नीच अथवा शूद्र या दुर्बल आदमी कम हों।

जातीय उन्नति का यह रहस्य है कि उस में अधिक संख्या (Middle Classes) मध्य श्रेणी वाले मनुष्यों की हो और छोटी श्रेणियें अर्थात (Lower Classes) बहुत कम हों। जिस जाति को सामाजिक बनावट में इस बात के तो असंख्यात अवसर हैं कि उनकी (Lower Classes) अर्थात् शूद्रों की श्रेणियां बढ़ती जावें परन्तु इस बात का कोई अवसर नहीं कि मध्य श्रेणि में बढ़ती हो सके वह जाति कभी जाति भाव से उन्नति नहीं कर सकती—जातीय उन्नति का यह रहस्य है कि इस में से (Lower Classes) अर्थात् शूद्रों की संख्या दिन प्रति दिन कम होती जावे और (Middle Classes) की संख्या बढ़ती जावे। इस का यह अभिप्राय है कि (Lower Classes) में शूद्रों को यह अवसर दिया जावे कि वे उन्नति करके न्यून से न्यून वैश्य बन सकें। उनमें से विशेष योग्यता और गुण सम्पन्नता रखने वाले निःसन्देह ब्राह्मण और क्षत्रिय बन जावें परन्तु यह हक प्रत्येक का होना चाहिये कि वह उन्नति करता हुआ कम से कम वैश्य तो अवश्यमेव बन सकें! पश्चिमी जातियें आज इस यत्न में लगी हुई हैं कि अधिक धनाढ्य श्रेणियों को कम किया जावे और उनके धन का आधार भूत (Lower Classes अर्थात् नीच मज़दूरी करने वाली श्रेणियों को उठा कर किया जावे।

हम को कम से कम यह चेष्टा तो अवश्य करनी चाहिये कि हमारे शूद्र, शूद्र अवस्था से निकल कर द्विज बन जावें अपने मैं सहजाति हिन्दु भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि वे मनु महाराज की उस व्यवस्था पर विचार करें कि "जिस जाति में शूद्रों की संख्या अधिक हो

और द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की संख्या कम हो उस जाति में दुर्भिक्ष और उड़ कर लगने वाले रोग अर्थात् ताऊन फैल जाती है" यह व्यवस्था बिलकुल सचाई पर निर्धारित है। जिस जाति में विद्या हीन और मैले मनुष्यों की संख्या अधिक होगी और विद्वान्, धर्म्मात्मा और स्वच्छ रहने वाले मनुष्यों की संख्या कम होगी उस में अधिक संख्या की मूर्खता और अपवित्रता का परिणाम अवश्य दुर्भिक्ष और ताऊन होगी। दुर्भिक्ष और ताऊन का प्रतिकार करने वाले विद्या धर्म्म, धन और पवित्रता है। धन और पवित्रता दोनों का आधार विद्या और धर्म्म पर है। शूद्र उस मनुष्य को कहते हैं जो विद्याहीन हो और धर्म्म के संस्कार न करता हो इस वास्ते देश में से दुर्भिक्ष और ताऊन को दूर करने का एक बड़ा उपाय यह है कि शूद्रों को विद्या और धर्म्म का दान देकर द्विज बना दिया जावे।

गत मर्दुमशुमारी के काग़ज़ों को जिन लोगों ने पड़ताल किया है वे लिखते हैं कि हिन्दुस्थान में पांच करोड़ से अधिक ऐसे हिन्दु हैं जिन के साथ कोई हिन्दु नहीं छूता, सामाजिक व्यवहार का तो कहना ही क्या? इन के अतिरिक्त ऐसे शूद्र की संख्या भी बहुत बड़ी है जिन को हमारे पौराणिक भाइयों के मतानुकूल वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं। यदि हिन्दुओं की कुल आबादी में से इन अछूत जातियों तथा शूद्रों को निकाल दिया जावे तो फिर ज्ञात हो जावेगा कि शूद्र कितने कम हैं, और इस देश में बार २ दुर्भिक्ष और बीमारी पड़ने का यही कारण है कि इस में द्विज लोग कम हैं और शूद्र अधिक हैं।

इसके अतिरिक्त एक और सबल सिद्धान्त है जिस पर इस पुस्तक में विचार किया गया है वह प्रायश्चित्त का विषय है। प्राचीन हिन्दू शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान भिन्न २ है। समयानुकूल प्रायश्चित्त विधि भी बदली गई है, परन्तु जब तक हिन्दुओं में धार्मिक तथा राजनैतिक बल रहा उन्होंने किसी विदेशी या अनार्य्य को धर्म्म दान देकर अपने अन्दर मिलाने से इनकार नहीं किया और यह तो असम्भव ही था कि वे पतितों को वापिस लेने से इनकार करते। मुसलमानों के राज्याधिकार के दिनों में पहले पहल यह नियम बनाया गया था कि जो मनुष्य मुसलमान हो जाता था उसको वापिस नहीं लिया जाता था प्रतीत ऐसा होता है कि इस नियम के चलाने का कारण उस समय की आवश्यकता थी। परन्तु आज कल की आवश्यकता बतला रही है कि यदि हिन्दु इन दिनों में भी उसी नियम पर कटिबद्ध रहें जिस पर कि मुसलमानों के दिनों में थे तो इनका सामाजिक बल बहुत कम हो जावेगा और करोड़ों हिन्दु इन से अलग हो जावेंगे।

इस समय दो धार्म्मिक समुदाय देश में हिन्दुओं के विरुद्ध काम कर रहे हैं अर्थात् मुसलमान और ईसाई मुसलमान अपने धर्म के इतने अनुरागी हैं कि वे नये मुसलमान का विशेष सम्मान करते हैं। और सदा सब प्रकार स्वधर्म की शिक्षा देकर वा प्रचार करके मुसलमानों से भिन्न अन्य धर्मावलम्बियों को मुसलमान बनाने के लिये उद्यत हैं। मुसलमानी धर्म्म में जात पांत का बन्धन नहीं और यह धर्म बल पूर्वक इस बात की शिक्षा देता है कि सब मुसलमान भाई हैं और बराबर हैं यद्यपि हिन्दुस्तान के मुसलमानों में जात पांत

का भेद पाया जाता है परन्तु वास्तव में यह मुसलमानीधर्म्म की शिक्षा के विरुद्ध है। परन्तु नये मुसलमान हुए मनुष्यों पर इसका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। मुसलमान होते ही प्रत्येक पुरुष को प्रत्येक मसजिद में नमाज पढ़ने और मुसलमानों की श्रेणी में खड़ा होने का अधिकार हो जाता है। मुसलमान लोग नये हुए मुसलमानों से असाधारण रीति से प्रेम प्रकट करते हैं उनके लिये खान पान के पदार्थ सब पहुंचा देते हैं। उनके विवाह करा देते हैं। उन्हें सब प्रकार से सहायता करते हैं। जिसका परिणाम यह है कि हजारों की संख्या में हिन्दू नर नारियें मुसलमान होती जाती हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दू अपनी विधवाओं पर इतनी कठोरता करते हैं कि इनमें से कई मुसलमान हो जाती हैं। और इस प्रकार उस कठोरता से छुटकारा पाती हैं जो हिन्दू रहने की अवस्था में उनके साथ होती है। बीस वर्ष पहले बंगाल में हिन्दू अधिक थे और मुसलमान कम। परन्तु इन बीस वर्षों में मुसलमानों की संख्या हिन्दू बंगालियों से बहुत अधिक हो गई। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी मुसलमानों की वृद्धि हिन्दुओं से बहुत अधिक है। गत मनुष्य गणना के अनुसार पञ्जाब में मुसलमानों की वृद्धि हिन्दुओं से प्रति शतक पांच गुणा अधिक थी। यही दशा अन्य प्रान्तों की है। इस दशा में यदि हिन्दु अपने मुसलमान हुए २ भाइयों को सदा के लिये निकाल देंगे और उन में से उनको जो लौटकर आना चाहें प्रायश्चित्त कराकर लेना स्वीकार न करेंगे तो एक समय आवेगा कि हिन्दु इस देश में से निर्मूल हो जावेंगे।

यही भय हिन्दुओं को ईसाइयों से है। ईसाई इस देश

में अपने धर्म प्रचार के लिये और इसको सर्वप्रिय करने के लिये असंख्य साधन बरत रहे हैं। हज़रत ईसा ने अपने शिष्यों से कहा कि सब जगत् में फैल जाओ और जिस तरह मैंने उपदेश दिया है उसी तरह इसको फैलादो।

अपने नबी के इस उपदेश पर आचरण करते हुए ईसाई प्रचारक और पादरी सारे आर्यावर्त्त में फैले हुए हैं यहां तक कि पहाड़ों की कन्दराओं में और पर्वतों की चोटियों पर वे स्थान २ पर मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें धर्म भाव बहुत अधिक है और इस वास्ते अपने धर्म्म का प्रचार करने के वास्ते वे नाना प्रकार के दुःख सहन करते हैं, बरसों घर से और नगरों से अलग रहते हैं एक २ प्रचारक अपने आपको दुनियां से काट कर ऐसा अपने काम में तन्मय हो जाता है कि वह सैकड़ों और हज़ारों को ईसाई किये बिना दम नहीं लेते। वह प्रेम से लालच से और सेवा से सब भांति लोगों के मनों को अपनी ओर आकर्षित करता है और इन तीनों उपायों से अपने धर्म्म का महत्व लोगों के दिलों पर बैठाता है। संसार में गहरी फ़िलासफी के जानने वाले कम होते हैं लोग तो बाहर का प्रभाव देखते हैं। ईसाई अपनी पाठशालाओं, अपने औषधालयों, अपने अनाथालयों और अपने गरीबखानों के द्वारा अपने धर्म्म का महत्व बच्चों और युवावस्था के लोगों के दिलों पर बैठाते हैं। प्रथम तो वे उनका विश्वास अपने धर्म्म पर से हटाकर निर्बल कर देते हैं और फिर अपने प्रेममय प्रभाव से शनैः २ उनको अपनी ओर खैंच लेते हैं। कितने ही युवक ईसाई स्त्रियों तथा ईसाई लड़कियों की सभ्यता और बनाव चुनाओं को देखकर लट्टू हो जाते हैं।

कई एक उदरपूर्ण के कारण पादरियों के शरणागत हो जाते हैं। कई तो बहुत थोड़े से सांसारिक लाभ से ही आकर्षित होकर चले जाते हैं, बहुत से ऐसे हैं जिनमें निर्धनता और दरिद्रता ऐसे भाव नहीं छोड़ती। जिसे वे सच्चे धर्म की बारीक फिलासफी को समझ सकें, उनके वास्ते तो रोटी कपड़ा ही धर्म है और यदि इस रोटी कपड़े के साथ इनको विद्या और स्त्री भी मिल जावे तो फिर तो कहना ही क्या! लाखों हिन्दू इस प्रकार ईसाई होते हैं, उनमें से बहुत से तो वापिस आने का नाम नहीं लेते क्योंकि आजकल हिन्दुपन में कुछ लाभ दीख नहीं पड़ता परन्तु कई ऐसे भी हैं जो अपने किये पर पछताते हैं और अपने धर्म्म में वापिस आने की इच्छा प्रकट करते हैं, उनको हमारे भोले हिन्दू नही लेते। बहुत सी ईसाई स्त्रियें आज कल हिन्दुओं के घरों में लड़कियों और दूसरी स्त्रियों को शिक्षा देने के लिये जाती हैं और वे उन पर अपने धर्म का प्रभाव डालती हैं, निर्लज्ज हिन्दू प्रथम तो अपने बालक तथा बालिकाओं के लिये धार्मिक और सांसारिक विद्या का प्रबन्ध नहीं करते और दूसरे जब कोई भूल से अपने धर्म से पतित हो जाता है तो फिर उसको वापस लेने से इनकार करते हैं जिसका परिणाम यह है कि इन कारणों से भी हिन्दुओं की संख्या में बड़ी कमी हो जाती है।

परन्तु इन सब बातों से अधिक आवश्यक यह बात है कि इन हानिकारक बन्धनों से हिन्दु धर्म्म पर हिन्दुओं की अपनी अश्रद्धा होती जाती है। जिस धर्म्म में यह शक्ति नहीं कि वह गिरे हुए को उठा सके, भूले हुए को सत्य मार्ग पर लासके, जिस धर्म में ऐसा कोई मार्ग नहीं जिससे पतित

उद्धार हो सके, जिस धर्म में अपराध के क्षमा करने का कोई प्रबन्ध नहीं, जिस धर्म्म में पश्चाताप करने पर भी शुद्धि नहीं हो सकती वह धर्म्म, धर्म्म के उन आवश्यक अङ्गों से वञ्चित हैं जिनके बिना धर्म्म धर्म्म कहलाने का अधिकारी नहीं। इसका परिणाम यह है कि करोड़ों हिन्दु केवल नाम मात्र के हिन्दु हैं और प्रतिक्षण अपना धर्म्म छोड़ने के लिये उद्यत रहते हैं।

इन दिनों में रेल गाड़ियों और जहाज़ों ने यात्रा को सुगम कर दिया है, सांसारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के वास्ते हिन्दुओं को चाहिये कि वे अपने घर के कुएं से निकल कर दुनियां को देखें और अन्य देशों में जावें चाहे विद्या सीखने के लिये चाहे व्यापार के वास्ते, इस वास्ते समय के प्रवाह को देख कर यह असम्भव प्रतीत होता है कि हिन्दु जात पांत को और छूत छात के उन बन्धनों को रख सकें जो अब तक उनके अन्दर चले आये हैं। प्राचीन शास्त्रों में इस बात के बहुत प्रमाण मिलते हैं कि पुराने हिन्दुओं में खान पान और छूत छात की वह कठोरता न थी, वे लोग प्रत्येक मनुष्य को धर्म्म दान देते थे और प्रायश्चित कराकर अपनी सोसाइटी में सम्मिलित कर लेते थे, यदि कोई मनुष्य अपने धर्म से गिर जाता था तो उसका भी प्रायश्चित कराकर फिर अपने पहले पद पर स्थापित कर देते थे। इस छोटी सी पुस्तक में शास्त्रों के यह सब प्रमाण इकट्ठे किये गये हैं। इस बात की आवश्यकता है कि हिन्दुओं में इन भावों को फैलाया जावे ताकि उनको अपने शास्त्रों की आज्ञाओं का परिचय हो

जाय। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दु पब्लिक पं० रामचन्द्र शास्त्री के इस परिश्रम का सम्मान करेगी।

लाहौर
२ अक्तूबर १६०६ } लाजपतराय

वेदोपदेश

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः
सधुराश्चरन्तः । अन्योऽन्यस्मै वल्गु वदन्त
एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥ ५ ॥

अथर्व ३ ॥ ३० ॥ ५

बड़े बनो, समझ वाले बनो, मत बिछड़ो, सफल होते जाओ। एक साथ मिलकर एक धुरा को उठाओ, एक दूसरे के लिये मीठा बोलो, आओ मैं तुमको साथ चलने वाले और एक मन वाले बनाता हूं ॥

पतित परावर्त्तन।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥

ऋ० १०-१३७-१

अय विद्वानो ! जो गिरे हैं उन को फेर उठाओ। जिन्होंने पाप किया है या जिन का जीवन मैला हो गया है उन को फिर से जीवन दो या शुद्ध करो।

वर्णपरिवर्त्तन या अनार्यों को आर्य बनाना

आसंयतं मिन्द्रणः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीमम्रंभ्राम्। यया दासान्यार्याणि वृत्राकरो वज्रिन् सुतुकानाहुषाणि॥ ऋ० ६-२२-१०

हे इन्द्र! शत्रुओं के निवारणार्थ हमें उस बड़ी सङ्ग शक्ति को दे, जो हिंसा रहित और कल्याणकारक है। जिससे तुम दासों (अनार्यों) को आर्य बनाते हो, जो मनुष्यों के वृद्धि का हेतु है।

इस मन्त्र का भावार्थ लिखते हुए—स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—"हे राजन्! आप सत्यविद्या के दान और उपदेश से शूद्र के कुल में उत्पन्न हुओं को भी द्विज करिये। और इस प्रकार से ऐश्वर्य को प्राप्त कराय तथा शत्रुओं को निवारण करके सुख की वृद्धि कीजिये"।

दूसरों को धर्म दान अथवा तबलीग़

इन्द्रं वर्द्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ऋ० ६-६३-५

परमेश्वर के नाम को बढ़ाते हुए, सब संसार को आर्य्य

बनाते हुए, और अदानियों को पछाड़ते हुए आगे बढ़े ।

मिमी हि श्लोकं मास्ये पर्जन्यं इवततनः ।
गायंगायत्र मुक्थ्यम् ॥ ऋ० १-३८-१४

हे विद्वन्! तू अपने मुख में वेद के स्तुति वचनों को भर-और मेघ के तुल्य सर्वत्र वर्षादे । गाने योग्य गायत्री छन्द वाले स्तोत्रों को गा, और दूसरों से गवा ॥

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्यायचस्वायचारणाय

यजुः २६-२

जैसे मैं इस कल्याण करने वाली वाणी को सम्पूर्ण जनों के लिये उपदेश करता हूं, वैसे ही तुम भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अपने और पराये को उपदेश करो ।

वेद पढ़ने का सब को अधिकार है।

येनं देवा न वियन्ति नो चं विद्विष्यतें मिथः
तत्कृण्मो ब्रह्मवोगृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥

अ० ३-३०-४

जिस वेद ज्ञान से विद्वान् लोग आपस से अलग नहीं होते

और ना ही परस्पर द्वेष करते हैं। उस वेद को हम तुम्हारे घरों में देते हैं जो सब का सांझा ज्ञान है।

द्विजों और शूद्रों का मेल जोल।

येधीवानोरथकाराः कर्मारा ये मनीषिणः।
उपस्तीन् पर्णमह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितोजनान्॥

अ० ३-५-६

हे पालक परमेश्वर जो बुद्धिमान् कैवर्त्त, (धीवर) रथों के बनाने वाले, अर्थात् तरखाण या खाती, और लुहार आदि हैं, उन सब को मेरे समीप बैठने वाला बना।

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसुमाकृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यंत उत शूद्र उतार्य्ये॥

अ० १९-६२-१

हे परमेश्वर! मुझे ब्राह्मणों का प्यारा बना, मुझे क्षत्रियों का प्यारा बना मुझे सब देखने वालों का प्यारा बना, चाहे वह शूद्र हो या आर्य।

किसी ने सत्य कहा है कि:—

"नीचैर्गच्छत्युपरिच दशाचक्रनेमिक्रमेण"॥

संसार की दशा सदा एक रस नहीं रहती।

जिस जाति का यह सिद्धान्त हो कि—

कर्म प्रधान विश्व रचराखा, जो जस करे सो तस फल चाखा॥

जिसने अपनी विद्या और तप से न केवल यह अनुभव ही किया हो कि:—

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण माप-द्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥

आपस्तंब २।५।११॥

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को उपलब्ध करता है। और अधर्माचरण से उत्तमवर्णी नीच बन जाता है, प्रत्युत अपने अनुष्ठान से दर्शाया कि:—

यात्यधोऽधो व्रजत्युच्चैर्नरः स्वैरेवकर्मभिः।
कूपस्यखनितायद्वत् प्राकारस्येव कारकः॥

हितो० सु० ४२।

मनुष्य अपने कर्म से ऊंचा और नीचा बन जाता है। जैसे दीवार चुनने वाला, और कूप खोदने वाला।

जिसने उच्च स्वर से यह घोषणा दी कि:—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छातिसान्वयः ॥

मनु० २।१६८

अश्रोत्रिया अननुवाक्या अनग्नयो वा शूद्रस्यसधर्मिणो भवन्ति ॥ वसिष्ठ ध० सू० ३।१

जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्यत्र प्रयत्न करता है। वह जीता ही पुत्र पौत्रादि सहित शूद्र हो जाता है।

जो ब्राह्मण के घर उत्पन्न हो कर न वेद पढ़ते हैं, और न पढ़ाते हैं, न अग्नि आधान किये हैं वे शूद्र के बराबर हैं।

जिसका यह सिद्धान्त हो कि:—

यस्तु शूद्रोदमेसत्ये धर्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मण महं मन्ये वृतेन हि भवेद्द्विजः ॥

महाभारत वन० अ० २१६

शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्यं द्विजेतच्च न विद्यते ।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

महाभा० शा० आ० १९

जो शूद्र गृहोत्पन्न दम, धर्म, और सत्य में आरूढ़ है मैं उस को ब्राह्मण मानता हूं। क्योंकि वृत्त से ही ब्राह्मण बनता है।

यदि ब्राह्मण के लक्षण शूद्र में पाये जाते हैं, और शूद्र के ब्राह्मण में तो वह शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं।

शोक !!! आज उसके अनुयायी कई एक सनातन धर्माभिमानी यह कहें कि एक भ्रष्टाचारी अव्रती ब्राह्मण कुमार ब्राह्मण ही रहेगा क्योंकि वह ब्राह्मण के घर जन्मा है।

और एक सदाचारी ब्रह्मचारी दमी, शूद्र, शूद्र ही बना रहेगा क्योंकि वह शूद्र वीर्य से उत्पन्न हुआ है।

यह शास्त्र प्रतिकूल कपोल कल्पित सिद्धान्त न केवल उन की अज्ञता और हठ धर्मी का परिचय देता है, प्रत्युत इसी पाप प्रचारक सर्वन शक सिद्धान्त ने जहां ब्राह्मणों को विद्या हीन कर सर्व का तिरस्कार पात्र बनाया वहां साथ ही उन छोटी जातियों को सदा के लिये बढ़ने से रोका।

और इसी से आर्य्य जाति का ह्रास हुआ, अतः युक्त प्रतीत होता है कि इस भ्रम जाल को काटने के लिये प्रथम (वर्ण परिवर्त्तन) नाम प्रकरण का आरम्भ किया जावे। क्योंकि यदि शास्त्रों से यह सिद्ध हो कि नीच ऊंच और ऊंच नीच बन सकते हैं, और सदा से बनते आये हैं, तो इस वर्तमान विवाद अर्थात् शुद्धि विषय की सिद्धि में भी सन्देह की इति श्री हो जावेगी।

वर्ण परिवर्त्तन।

शास्त्रों का सिद्धान्त है कि (लक्षण प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः) लक्षण और प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि होती है। इस लिये निरुक्त के कर्त्ता यास्काचार्य्य वर्ण की निरुक्ति करते हुए लिखते हैं, किः—

[वर्णो वृणोतेः] नि०अ० २-खं० ३

"वर्णीया वरितुमर्हा गुणकर्म्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते येते वर्णाः"। वर्ण को वर्ण इस लिये कहा जाता है, कि इसे मनुष्य गुण कर्म स्वभाव से प्राप्त करते हैं।

जब भारद्वाज मुनि ने भृगु जी से पूछा किः—

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम ।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रषे तदब्रूहि वदतांवर ॥१॥

भा० शां० अ० १८९

हे द्विजश्रेष्ठ ! कृपा करके मुझे बतावें कि किस कर्म्म से ब्राह्मण बनता है, और किस से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बनते हैं। तब भृगु बोले–

जातकर्म्मादिभिर्यस्तु संस्कारः संस्कृतःशुचिः ।
वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सुकर्म्म स्ववास्थितः ॥२॥
शौचाचार स्थितःसम्यक् विघसाशी गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरःस वै ब्राह्मण उच्यते ॥३॥
सत्यंदानं मथाद्रोह आनृशंस्यंत्रपा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥४॥
क्षत्रं च सेवते कर्म्म वेदाध्ययन संगतः ।
दाना दान रतिर्यस्तु सवै क्षत्रिय उच्यते ॥५॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संगतः ॥६॥
सर्वभक्षरति र्नित्यं सर्व कर्म्म करोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारःसवै शूद्र इति स्मृतः ॥७॥

जो जात कर्मादि संस्कारों से संस्कृत पवित्र वेदाध्ययन में तत्पर छः अर्थात् (अध्ययनाध्यापनादि) मनुप्रोक्त ब्राह्मण कर्मों में तत्पर शौचाचार में स्थित, विघसाशी (यज्ञ शेष के खाने वाला) गुरु प्रियव्रती और सत्य प्रिय है वही ब्राह्मण है। जिसमें सत्य दान अद्रोह अनृशंसता लज्जा दया और तप देखे जाते हैं, वही ब्राह्मण है।

क्षत्रिय—जो क्षात्र कर्म (अर्थात् की रक्षा) करता है और वेदाध्ययन भी करता है। और दान करता है लेता नहीं वह क्षत्रिय है।

वैश्य—जो वाणिज्य पशु पालन और कृषि कर्म में आसक्त है वेद को पढ़ाता है, वह वैश्य कहा जाता है।

शूद्र—जो सर्व भक्षी, सर्व, कर्त्ता, अपवित्र-वेद विहीन और आचार हीन है वह शूद्र है।

इसी की पुष्टि महाभारत वन पर्व अ० २१६ में इस प्रकार की गई हैं।

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्म्मसु।
दाम्भिको दुष्कृतःपापः, शूद्रेण सदृशो भवेत्॥१॥
यस्तु शूद्रोदमे सत्यं धर्म्मेच सततो स्थितः।
तं ब्राह्मण महंमन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः॥२॥

जो ब्राह्मण दम्भी पापी और पतित, दुष्कर्मों में लग जाता है वह शूद्र है, और जो शूद्र दम, धर्म्म और सत्य में

आसक्त है, मैं उस को ब्राह्मण मानता हूं, क्योंकि वृत्त से ही ब्राह्मण बनता है।

भारद्वाज मुनि ने भृगु जी से पूछा, कि:-

कामः क्रोध भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णोविभज्यते ॥७॥
स्वेद मूत्र पुरीषाणि श्लेष्मापित्ते सशोणितम्।
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥८॥
जङ्गमानाम संख्येया स्थावराणां च जातयः।
तेषां विविध वर्णानां कुतो वर्ण विनिश्चयः ।९।

भा० शां० अ० १८८

जब कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि हम सब में एक से पाये जाते हैं, तो फिर वर्ण विभाग कैसे ?

जब कि स्वेद मूत्र पुरीषादि सब के शरीर से समान ही निकलते हैं, तो फिर वर्ण विभाग कैसे ?

जब के जंगम और स्थावरादि असंख्य जातियें हैं इन का वर्ण विभाग कैसे ?

इसका उत्तर देते हुए भृगु महात्मा कहते हैं—

नाविशेषोऽस्तिवर्णानां सर्वं ब्राह्म मिदं जगत् ।
ब्रह्मणापूर्व सृष्टं हि कर्म्माभि र्वर्णतांगतम् ॥१०॥

वर्णों में कोई विशेष नहीं क्योंकि प्रथम सब ब्रह्मा से उत्पन्न किये सत्व प्रधान ब्राह्मण ही थे । परन्तु कर्म वश से भिन्न भिन्न वर्ण बन गये । जैसे-

क्षत्रिय—काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधना प्रियसाहसाः त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतांगताः ॥ ११ ॥

उन्हीं ब्राह्मणों में से जो लोग काम प्रिय भोगी तीक्ष्ण स्वभाव क्रोधी, साहसी और ब्राह्म धर्म्म से कुछ फिसल कर युद्ध प्रिय हुए वे क्षत्रिय कहलाने लगे ।

वैश्य—गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्यु-पजीविनःस्वधर्म्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजाः वैश्य-तांगताः ॥ १२ ॥

जिन ब्राह्मणों ने अपने धर्म्म को छोड़, गो सेवा कृषि और वाणिज्य धर्म्म स्वीकार किया, वे वैश्य कहलाये ।

शूद्र—हिंसा नृत प्रिया लुब्धाः सर्व कर्म्मोप-जीविनः । कृष्णाः शौच परिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३ ॥

जो ब्राह्मण हिंसा युक्त मिथ्यावादी लोभी सर्व कर्म्म के करने वाले और शौच से रहित हुए वे शूद्र कहलाने लगे।

इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजाः वर्णान्तरंगताः।
धर्मोयज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥१४॥
इत्येते चतुरोवर्णाः येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्राह्मणं पूर्वं लोभाच्चाज्ञानतांगताः।१५।

इन कर्मों से व्यस्त हो कर चारों वर्ण हुए—इन चारों को धर्म्म और यज्ञ कर्म्म में निषेध नहीं।

इस प्रकार ये चारों वर्ण हुए। इन चारों के लिये ही ब्राह्मी सरस्वती (वेदवाणी) परमात्मा ने प्रदान की है परन्तु ये लोभ वश से अज्ञानी बन गये।

ब्राह्मणा ब्रह्मतंत्रस्थास्तपस्तेषां न नश्याति।
ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा।१६।
ब्रह्मचैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः।
तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्रद्विजातयः॥१७॥
पिशाचाराक्षसाः प्रेताः विविधाः म्लेच्छ जातयः। प्रनष्ट ज्ञानं विज्ञानाः स्वच्छन्दाचार चेष्टिताः॥ १८॥

मां० शां० अ० १८८,

जो ब्राह्मण वेदों और व्रत को धारण किये हैं उनका तप नष्ट नहीं होता ॥

अय ! भारद्वाज वेद ही परम तप है—जो वेद नहीं जानते वह "अद्विज हैं।"

और इन्हीं अद्विजों की इधर उधर अनेक जातियें देखी जाती हैं। और इन्हीं से राक्षस " पिशाच म्लेच्छादिक " की उत्पत्ति है।

यदि कोई जाति पक्षपात में पड़ कर स्वार्थ लोलुपता से वर्ण व्यवस्था केवल जन्म से मानने लगती है, तो वह जल्दी अपने पद से गिर जाती और नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। जब तक कि पुनः उसका संस्कार वा उद्धार नहीं किया जावे। क्योंकि भगवान् कृष्णचन्द्र के कथनानुसार—

यः शास्त्र विधिमुत्सृज्यवर्त्तते कामचारतः।
न च सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

भगवद्गीता १६–२३

जहां शास्त्र मर्यादा का परित्याग होता है, और कामचारता प्रवेश करती है, वहां किसी प्रकार का भी कल्याण नहीं आ सकता।

यही कारण है, कि आज जन्म से ही जगद्गुरु कहलाने वाले वेदत्यागी, नाना व्यसनों में आसक्त होकर धर्म्मार्थ से रिक्त हो रहे हैं। परन्तु प्राचीन समय में जब कि सदाचार की प्रधानता थी जब कि धर्म्म का राज्य था, उस समय यह दशा न थी लोग नीच कर्म्म से भय खाते थे, और सत्कर्मों

द्वारा उत्तम बनने का प्रयत्न करते और बनते थे जिनके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं ॥

सत्य कामो ह जाबालो जबालां मातर मा मंत्रयां चक्रे " ब्रह्मचर्य्यं भवति ! विवत्स्यामि " किं गोत्रोऽहमस्मीति ?

सा हैनमुवाच नाहमेवं वेद तात ! यद्गोत्रस्त्वमासिबह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे । साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमासि । जबाला तु नामाहमास्मि सत्यकामो नामत्वमासि॥ स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति ।

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला से पूछा कि मातः मैं ब्रह्मचर्य वास करना चाहता हूं । बता मैं किस गोत्र का हूं ! उसने कहा पुत्र मैं यह नहीं जानती तू किस गोत्र का है मैं इधर उधर फिरती थी मैंने अपनी जवानी में तुझे पाया है सो मैं नहीं जानती तू किस गोत्र का है हां मेरा नाम जबाला है और तेरा नाम सत्य काम सो तू यही कहो कि मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं ॥

सहारिद्रुमतं गौतम मेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवाति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ २ ॥

यह हारिद्रुमत (हरिद्रुमान के पुत्र) गौतम के पास आया और कहा भगवन् ! मैं आपके पास ब्रह्मचर्य वास करूंगा भगवन् मैं आप के पास आया हूं ॥

तꣳहोवाच 'किं गोत्रोनुसौम्यसीति' स होवाच नाहमेतद्वेद भो ! 'यद्गोत्रोऽहमस्मि' अपृच्छं मातरꣳ सा मा प्रत्यब्रवीत् "बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवनेत्वामलभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि । सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो ! इति तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणोविवक्तुमर्हति । समिधं सौम्याहरो पत्वानेष्ये न सत्यादगा इति ॥

छांदोग्य० प्रपा० ४ खं० ४

गौतम ने उसे कहा कि सौम्य तू किस गोत्र का है उसने उत्तर दिया "भगवन् ! मैं नहीं जानता कि मैं किस गोत्र का हूं ! मैंने अपनी माता से पूछा था—उसने मुझे कहा कि इधर उधर फिरती हुई मैंने जवानी में तुझे पाया है सो मैं नहीं जानती तू किस गोत्र का है, हां मेरा नाम जबाला है तेरा नाम सत्यकाम सो हे भगवन् ! मैं जबाला का पुत्र सत्यकाम हूं ॥"

तब उस ऋषि ने कहा यह बात अर्थात् ऐसी सचाई सिवाय

ब्राह्मण के कोई नहीं कह सकता । जा सौम्य समिधा ले आ मैं तेरा उपनयन करूंगा क्योंकि तू सच्चाई से नहीं गिरा है ॥

२—एवं ऐतरेय ब्राह्मण २–१९ में कवष ऐलूष का इतिहास आता है ।

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । ते वै कवषमैलूषं सोमादनयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नोमध्ये दीक्षिष्टेत्यादि ॥

ऋषि लोग सरस्वती के किनारे यज्ञ करते थे । उन्होंने कवष ऐलूष को यज्ञ से बाहर निकाल दिया । क्योंकि वह एक तो दासी का पुत्र था दूसरा जुवारी था पश्चात् इसने विद्या पढ़ने का व्रत धारण किया और संपूर्ण ऋग्वेद पढते पढ़ते उसको नये नये विषय प्रकाशित होने लगे यह देख ऋषियों ने उसे यज्ञ में बुलाया और उस को आचार्य बना कर यज्ञ की विधि को पूरा कराया ।

और पीछे से यही कवष ऐलूष ऋग्वेद मं० १० अनु० ३ सु० ३०—३४ तक का ऋषि हुआ ।

३—पृषध्रस्तु गुरु गोवधाच्छूद्रत्वमगमत् ।

विष्णु० पु० ४—१—१५

पृषध्र गुरु और गौ के वध से शूद्र बन गया ।

४—नाभागो नेदिष्ट पुत्रस्तु, वैश्यता मगमत् ॥

वि० ४-१-१६

नेदिष्ट का पुत्र नाभाग कर्मवश से वैश्य बन गया।

५—भृगोर्वचन मात्रेण स ब्रह्मर्षितांगतः।

भा० अनु० अ० ३०

वीतहव्य राजा भृगु के वचन से ब्रह्मर्षि बना॥

युवनाश्व के पुत्र और—हरित हारीत हुए।

यह सब अंगिरा गोत्र के ब्राह्मण बने॥

६—विश्वामित्रोऽपिधर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्य मुत्त-मम्। पूजयामास ब्रह्मर्षिं वसिष्ठं जपतां वरम् ॥

वा० रा० बा० स० ६५

धर्मात्मा विश्वामित्र ने उत्तम ब्राह्मण की पदवी पाई। इत्यादि उदाहरणों से प्रकट होता है, कि कर्म वश से वर्ण परिवर्त्तन होता रहा है॥

म्लेच्छ यवनादिकों की उत्पत्ति और परिवर्तन।

महाभारत शा० प० अ० १८८ श्लोक १८ में

भृगु वाक्य से यह दर्शाया गया है, कि ब्राह्मण क्षत्रियादि चतुर्वर्णों से ही म्लेच्छ आदि वाह्य जातियों की उत्पत्ति है।

इस की पुष्टि भारत शांतिपर्व राजप्रकरण अ० ६५ में इस प्रकार से की गई है।

यवनाः किराताः गान्धाराश्चीनाः शवरवर्वराः शकास्तुषारा कङ्काश्च पल्लवाश्चा भ्रमद्रकाः ॥ १३ ॥ चौड्रापुलिन्दारमठा काम्बोजाश्चैवसर्वशः ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्चमानवाः ॥ १४ ॥

कि यवन (यूनान) किरात-कंधार चीनादि सम्पूर्ण जातियें ब्राह्मणादि चतुर्वर्णियों से ही उत्पन्न हुई हैं । अर्थात् क्रिया भ्रष्ट ब्राह्मणादिकों का ही नामान्तर है । यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है, कि वेद ने (ब्राह्मणोस्येत्यादि यजु० अ० ३१) गुणानुसार चार वर्णों का उपदेश किया और मनु ने तदनुकूल यह सिद्धान्त किया—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति हैं चौथा शूद्र एक जाति है, पांचवां वर्ण नहीं है । तो फिर ये म्लेच्छादि क्या हैं और कहां से आ गये हैं। इसका उत्तर देते हुए मनु महाराज लिखते हैं—

शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रिय जातयः ।
वृषलत्वं गताः लोके ब्राह्मणाः दर्शनेन च ॥

मनु० १० । ४३

पौण्ड्रकाश्चौड द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः पारदापल्हवाश्चीनाः किरातादरदा खशः ॥ ४४ ॥ मुखबाहु रूपज्जानां यालोके जातयोवहिः । म्लेच्छ वाचाश्चार्य भाषा सर्वेते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥

यह क्षत्रिय जातियें ही उपनयनादि क्रिया के लोप हो जाने से और (वेदवेत्ता) ब्राह्मणों के न मिलने से शनैः २ वृषल होगईं (अर्थात् धर्म्म हीन होगईं) और यवन म्लेच्छादि नामों से प्रसिद्ध हो गईं । आगे श्लोक ४५ में मनु बताते हैं, कि ब्राह्मणादि वर्ण ही क्रिया लोप से बाहिर की जातियें बनीं और वे जातियें, चाहे म्लेच्छ भाषा से युक्त थीं । या आर्य्य भाषा से, सब की सब दस्यु कहलायीं । कुल्लूक भट्ट पौण्ड्रक आदि की व्याख्या करता हुआ लिखता है, कि–

पौण्ड्रकादि देशोद्भवाः क्षत्रियाः सन्तः क्रियालोपादिना शूद्रत्वमापन्नाः ।

ये पौण्ड्रकादि देशोत्पन्न क्षत्रिय ही कर्म्म लोप से शूद्र बन गये।

न केवल क्रिया लोप से ही लोग म्लेच्छ बने, प्रत्युत इतिहासों के देखने से प्रतीत होता है, कि अनेक स्थानों में ब्राह्मणों ने जुल्म से लोगों को म्लेच्छ बनाया। विष्णु पु०—अंश ४ अध्याय ३ में लिखा है, कि त्रिशंकु की वंश में बाहू नाम राजा हुआ वह हैहय ताल जंघादिकों से शिकस्त खाकर अपनी गर्भवती स्त्री के साथ जङ्गल में भाग गया। और वहीं, औरवा ऋषि के आश्रम के पास उसकी मृत्यु हुई। जब उसकी स्त्री अपने आप को निराश्रय देख पति के साथ जलने लगी, तो औरवा ऋषि ने उस को समझाया कि तुम मत जलो क्योंकि तुम गर्भवती हो तुम्हारे उदर से एक तेजस्वी पुत्र पैदा होगा जो शत्रुओं को जीत कर चक्रवर्ती राजा बनेगा। इस प्रकार समझा बुझाकर उसको अपने आश्रम में ले आया। कुछ दिन बाद उसके यहां लड़का जन्मा ऋषि ने जात कर्म्मादि संस्कार कर उस का नाम सगर रक्खा। और विधि पूर्वक समयानुसार उपनयन संस्कार करा शास्त्र और शस्त्र विद्या की शिक्षा दे निपुण किया। जब वह लड़का ज्ञानवान हुआ तो उसने अपनी माता से अपना वंश और बन में आने का कारण पूछा जब माता ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा—

ततश्च पितृराज्यहरणाय हैहयतालजङ्घादि वधाय प्रतिज्ञामकरोत्॥ २३॥

अथैतान् वसिष्ठो जीवन्मृतकान् कृत्वासगरमाह वत्स ! अलं मेभिर्जीवन मृतकैरनुमृतैरेतैः च मयैवत्वत्प्रतिज्ञा परिपालनाय निजःधर्म्म द्विजसंग परित्यागं कारिताः ॥ २५ ॥

तब उसने अपने पिता का राज्य वापस लेने के लिये शत्रुओं के मारने की प्रतिज्ञा की । जब उसने बहुत से हैहय-ताल जंघादिकों का नाश किया, तब वह लोग अपनी रक्षार्थ, सगर के कुल गुरु वसिष्ठ की शरण में गये ।

तब वसिष्ठ ने उनके जीवन्मृतक अर्थात् जीते ही मरे हुए करके सगर को कहा, कि पुत्र अब इन मरों हुओं को मत मारो । मैंने तुम्हारी प्रतिज्ञापूर्त्ति के लिये इनको अपने धर्म्म और द्विजों के संग से बाहर कर दिया है । अर्थात् इन को जाति से बाहर कर दिया है ।

स तथेति तद्गुरुवचनमभिनन्द्य तेषां वेशान्यत्वमकारयत् । यवनान् मुण्डित शिरसोऽर्द्ध मुण्डान् शकान्प्रलम्बकेशान् पल्हवांश्चस्मश्रुधरान् निःस्वाध्यायवषट्कारान् एतानन्यांश्च क्षत्रियांश्चकार । ते चात्म धर्म्म परित्यागात् ब्राह्मणैश्च परित्यक्ताः म्लेच्छतां ययुः ॥ २६ ॥

तब सगर ने अपने गुरु के वचन को स्वीकार करके उन के वेशों में परिवर्तन कर दिया, जैसे किसी का सिर मुंडवा यवन नाम दिया किसी के केश रखवा दिये और शक नाम रखा और किसी की दाढ़ियें रखवा दीं, उनका पल्हव आदि नाम रखा और उन सब को स्वाध्याय आदि से बाहर कर दिया । इस प्रकार वह सब अपने धर्म के त्याग तथा ब्राह्मणों के त्याग से म्लेच्छ हो गये । इत्यादि प्रमाणों से न केवल यह ही सिद्ध होता है, कि ब्राह्मण ही केवल कर्म भेद से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बने प्रत्युत निस्सन्देह यह भी मानना पड़ता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही ब्राह्मणों के अदर्शन तथा क्रियालोप से म्लेच्छादि जातियें बनीं । और आर्य्यों से बाहर की गईं ।

अब देखना यह है, कि इन का अर्थात् म्लेच्छादिकों का पुनः परिवर्तन कैसे होता है । परन्तु इस से प्रथम यह बात याद रखनी चाहिये कि द्विज का अर्थ, दो जन्मों का है जो कि उत्पत्ति और यज्ञोपवीत संस्कार से मिलते हैं । जैसाकि धर्म्म शास्त्रकारों ने—

मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जी बन्धनात् ।
ब्रह्म क्षत्रिय विशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः ॥

मनु० २—३९ प्रतिपादन किया है ॥

इसी द्विजत्व अथवा यज्ञोपवीत संस्कार के लिये जिस के बिना कोई द्विज बन नहीं सकता ऋषियों ने भिन्न २ समय नियत किये जैसाकि—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।

गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥

मनु २ । ३६

आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालम संस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य विगर्हिताः ॥ ३९ ॥

गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण कुमार का, गर्भ से एकादश वर्ष में क्षत्रिय और द्वादश में वैश्य का उपनयन संस्कार हो। सोलह वर्ष पर्यन्त ब्राह्मण की बाईस वर्ष पर्यन्त क्षत्रिय चौबीस वर्ष पर्यन्त वैश्य की सावित्री नहीं जाती । अर्थात् यज्ञोपवीत काल की यह परमावधि है ।

इसके उपरान्त (यज्ञोपवीत न होने से) सावित्री पतित हो जाते हैं तब उनकी संज्ञा व्रात्य होती है और वे आर्यों में निन्दित गिने जाते हैं ।

इस पर एक व्यवस्था रणवीर कारित प्रायश्चित्त से उद्धृत की जाती है ताकि पाठक स्वयं अनुभव कर सकें कि किस प्रकार एक द्विजाति यज्ञोपवीत के न होने से निकृष्ट जाति बन जाता है, और पुनः कैसे उच्च होता है । देखो रणवीर कारित० प्रा० प्र० १२ पृ० ८७

अथ व्रात्यता ।

व्रात्य इति-व्रात, शब्दादि वार्थे य प्रत्ययेन निष्पन्नः, यद्वा व्रात, मर्हतीति-व्रातं नीचकर्म "दण्डादिभ्योय" इति व्रात्यः । शरीरायास-जीवी व्याधादिकोऽष्टाविंशाति संस्कारहीनो भ्रष्टगायत्रीकः । षोडशवर्षादूर्ध्वमप्य कृत व्रत-बन्धो दानाद्यकर्त्ता द्विजो व्रात्य इत्यमर टीका राजमुकुटी ।

(व्रातंच्फिजोरस्त्रियाम्) इति सूत्रे कौमुद्यांतु नाना जातीया अनियतवृत्तयः ।

[उत्सेधजीविनः संघा व्राता इति ।

व्रात्यानाहमनुः

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्य व्रतांस्तु यान् । तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत् ॥

मनु० १०—२०

व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः
आवन्त्यवाट धानौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥
झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च ।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एव च ।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च ॥ २३ ॥

अब व्रात्य का प्रायश्चित्त कहने वास्ते पहले व्रात्य शब्द का अर्थ करते हैं व्रात्य इति । व्रात शब्द के परे सादृश्य अर्थ में "य" प्रत्यय आने से व्रात्य शब्द सिद्ध हुआ ।

दूसरा अर्थ—व्रात जो है नीचकर्म तिसके योग्य जो होवे (दण्डादिभ्योयः) इस सूत्र करके "य" प्रत्यय आया तब व्रात्य सिद्ध हुआ । सो किसका नाम है कि शरीर के आयास करके जीवका करने वाले (जो व्याधादिक) भारवाहक हैं अठाईस संस्कारों से भ्रष्ट और सोलह वर्ष से उपरान्त नहीं हुआ यज्ञोपवीत जिसका और दानादि के न करने वाला जो द्विज तिसका नाम व्रात्य है । यह अमर कोष की राज मुकुटी टीका में लिखा है । (व्रातच्फञोरस्त्रियाम्) यह जो कौमुदी का सूत्र है इसमें बहुत जाति वाले और नहीं है नियम करके वृत्ति जिनकी अर्थात् कभी भारका कर्म करना कभी लकड़ी का वा चर्म का काम करना और शरीर करके जीविका करने वाले इनका जो समूह है तिसको व्रात्य कहते हैं ।

तैसे ही 'व्रातेन जीवति' इस सूत्र से व्रात क्या शरीर से आयास करके जीविका करता है बुद्धि करके जीविका न करे यह अर्थ है ।

"व्रातेन जीवति" इस सूत्र में महाभाष्य का भी प्रमाण कहते हैं (व्रातमित्यादिना) अब व्रात्यों को मनु जी कहते हैं जो ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य समान जाति की स्त्री में व्रतरहित उत्पन्न होवें और गायत्री भ्रष्ट होवें उन का नाम व्रात्य है और उन से आगे निम्न संज्ञिक सन्तान उत्पन्न होती है।

व्रात्य ब्राह्मण से तुल्य जाति की स्त्री में जो सन्तान उत्पन्न हो उस का नाम भूर्जकण्टक है। तथा आत्वन्त्यवांट, पुष्पध, शैख यह एक ही देश भेद से प्रसिद्ध नाम हैं।

व्रात्य क्षत्रिय से समान जाति की स्त्रियें उत्पन्न होने का नाम झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस, द्रविड़ है।

व्रात्य वैश्य से समान जाति की स्त्री में उत्पन्न सन्तान का नाम सुधन्वाचार्य, कारूष, विजन्मा, मैत्र, सात्वत हैं। इस लेख से पाठकगण स्वयं जान गये होंगे कि पूर्वोक्त व्यवस्थानुसार चर्मकार तथा नट आदि भी व्रात्य हैं जिन को स्मृतिकारों ने अन्त्यज माना है। इत्यादि व्यवस्था बतला कर आगे अ० पृ० १०३ में इनकी शुद्धि का वर्णन करते हुए आपस्तम्ब सूत्र में व्यवस्था दी है कि:—

"यस्य प्रपितामहादे रूपनयनं न स्मर्यते, तत्रार्थादे तेषामपि पुरुषाणामनुपनीतत्वं" त्ते सर्वेश्मशानवदशुचयः तेष्वागतेष्वभ्युत्थानं भोजनं च वर्जयेत् आपद्यपि न कुर्य्यादि-

त्यर्थः । तेषां स्वयमेव शुद्धि मिच्छतां प्राय-श्चित्तानन्तर मुपनयनम् ॥

जिन के प्रपितामह आदि से यज्ञोपवीत न हुआ हो, उन को भी अनुपनीतत्व है, वे श्मशान के तुल्य अपवित्र हैं, इनके आने पर खड़ा होना अथवा उन से खान पान आपत्ति में भी नहीं करना चाहिये । यदि वे अपनी शुद्धि की इच्छा करें तो उन को प्रायश्चित्त करा कर यज्ञोपवीत दे देना योग्य है।

तत ऊर्ध्वं प्रकृतिवत् १ आपस्तम्ब-१-१-२

और प्रायश्चित्त के अनन्तर प्रायश्चित्ती अपनी प्रकृति अर्थात् अपने असली वर्ण को प्राप्त करता है । और इस के सम्पूर्ण कर्म प्रथम वर्ण के होते हैं ।

यही आज्ञा मनु ११-१८८ में पाई जाती है।

"सर्वाणि ज्ञाति कर्म्माणि यथापूर्वं समाचरेत्"

शुद्ध हुआ पुरुष पहिले की तरह अपने वर्ण के कर्म करे।

इसी नियम के अनुसार भारत के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने रणवीर कारित प्रायश्चित्त में इन सब बाह्य जातियों की व्रात्य संज्ञा मान कर व्रात्य प्रायश्चित्त से ही शुद्धि की व्यवस्था दी है। देखो रणवीर प्रका० प्रा० प्र० १२।

उपपातक शुद्धि स्यादेवं चान्द्रायणेन वा ।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथवा पुनः ॥

या० प्रा० प्र० ५

याज्ञवल्क्य जी का सिद्धान्त है कि किसी प्रकार अर्थात् गोवध आदि के तुल्य सम्पूर्ण उपपातकियों की शुद्धि एक मास पर्यन्त पंचगव्याशन, चान्द्रायण, वा मास भर दुग्धपान अथवा पराक व्रत से होती है । इस प्रकार मिताक्षराकार व्यवस्था देता है कि:—

एतच्चा कामकारे शक्त्यपेक्षया विकल्पितं व्रत चतुष्टयं द्रष्टव्यम् । कामचारे चाह मनुः

एतदेव व्रतं कुर्य्यादुपपातकिनो द्विजाः ।
अवकीर्णिवर्ज्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायण मथापि वा ॥

यह अज्ञान से करने वालों के लिये शक्त्यानुसार चार विकल्पित व्रत अर्थात् इन में से शक्ति देख कर कोई एक व्रत करावें । इच्छा पूर्वक उक्त पाप करने से मनु कहता है कि उपपातकी विना अवकीर्णि के अपनी शुद्धि के लिये त्रैमासिक व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करें ।

यदि मनु के कथनानुसार यह सत्य है कि सम्पूर्ण जातियें क्रियाहीन द्विजाति ही हैं । और यदि यह सत्य है कि नट आदि गायत्री भ्रष्ट द्विजों की व्रात्य सन्तान है । तो यह भी सत्य है कि:—

[तेषां स्वयमेव शुद्धि मिच्छतां प्रायश्चित्ता-नन्तरमुपनयनम्]

आपस्तम्ब—१ । १ । १ । १

यदि वे अपनी शुद्धि की इच्छा करें तो उन को प्रायश्चित्त कराकर यज्ञोपवीत दे देना चाहिये।

यदि विष्णुपुराण के कथनानुसार यह सत्य है कि:-

क्षत्रियाश्चते धर्म परित्यागाद्ब्राह्मणैश्च परित्यक्ता म्लेच्छतां ययुः ॥ (वि० प्र० ४।३)

यह सब क्षत्रिय अपने धर्म के त्याग, और ब्राह्मणों के त्याग से म्लेच्छ बनें। तो क्या यह सत्य नहीं कि भारतवर्ष की वर्त्तमान सूरी, सेठी, चड्ढे, पगाड़े, स्याल, सैणी, माली, मलखान, राजपूत, गुज्जर, डोगर, कम्बोह, बढ़ई, काछी, कोली, नाई, छीबे, खखे, वबे आदि मुसलमान जातियें औरङ्गज़ेब आदि मुसलमानों के ज़ुल्म से अपना धर्म छोड़ मुसलमान बनीं? यदि बनी हैं अथवा बनायी गई हैं तो क्या ऋषियों की आज्ञा नहीं? कि:-

देशभङ्गे प्रवासेच व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षे देव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥
(पराशर ७। ४१)

देश के उपद्रव, प्रवास, व्याधि और व्यसन (मुसीबत) में येन केन प्रकार से अपने शरीरादि की रक्षा करे, पीछे शान्ति के समय में धर्म (प्रायश्चित्त) करले! क्या इसी का प्रायश्चित्त ऋषि ने नहीं बताया? कि:-

तेषां प्रायश्चित्तं मासं पयोभक्ष्यं गामनुगच्छेत्।

यश्चीर्ण प्रायश्चित्तस्तं वसिष्टब्रूते रूपनयेयुः ।
यथा प्रकृतिर्ऋतुछन्दो विशेषात् ॥ (हारीतः)

देश के उपद्रव आदि से जिन का यज्ञोपवीत उतारा गया हो उनके लिये यह प्रायश्चित्त है कि वे मास पर्यन्त दुग्ध पान करें और गौ की सेवा करें, पुनः यज्ञोपवीत धारण करें। जो पुरुष यम तथा हारीत की आज्ञानुसार मास पर्यन्त प्रायश्चित्त करले उस को वसिष्ठ के मतानुसार यज्ञोपवीत डालना चाहिये । जैसी प्रकृति (अर्थात् जिस वर्ण से भ्रष्ट हुआ हो उसी के अनुसार ऋतु और छन्द हो, जैसे वसन्त यह ब्राह्मण का इत्यादि ।

३—क्या यह सत्य नहीं कि:-

बलाद्दासी कृतोम्लेच्छैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ।
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणि हिंसनम् ॥ ९ ॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भक्षणम् ।
तत्स्त्रीणां तथा संगस्ताभिश्च सह भोजनम् ॥१०॥
कृच्छान्संवत्सरं कृत्वा सांतपनान् शुद्धि हेतवे ।
ब्राह्मणः क्षत्रियस्त्वर्धं कृच्छान् कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ११ ॥
मासोपितश्चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुद्ध्यति ॥ (देवलः)

जिनको म्लेच्छों वा चाण्डालादिकों ने बल से दास बना और उससे गौहत्या आदि नीच कर्म कराये हों उसने म्लेच्छों की जूठ मार्जन की हो, वा उनकी जूठ खायी हो, उनकी स्त्री के साथ मैथुन किया हो अथवा साथ खाया हो, तो ब्राह्मण एक वर्ष कृच्छ सांतपन कर, क्षत्रिय छः मास कृच्छ सांतपन करके

शुद्ध हो जाता है, वैश्य एक मास उपवास कर, और शूद्र चौथा भाग करके शुद्ध हो जाता है।

इसी शास्त्राज्ञा के अनुसार आर्य्यसमाज पतित म्लेच्छादिकों को शुद्ध करता है। इसी नियमानुसार वर्त्तमान भारत राजपूत शुद्धि महासभा पतित मुसलमान (राजपूतों) को शुद्ध कर रही है। और इसी भाव से श्रीशङ्कराचार्य के मठाधीश जगद्गुरु ने भी व्यवस्था दी है कि जो परिवार किसी कारण से पतित हो दूसरों में आ मिला हो उस का परिवर्त्तन हो सकता है। और इसी के अनुसार इस समय न केवल साधारण सनातन धर्मी सहस्रों लवाणा आदि (मुसलमानों) को शुद्ध करते हैं।

प्रत्युत हर्ष से कहा जाता है कि वर्त्तमान सनातन धर्म्म महापरिषद् ने भी गत वर्ष १९०८ ई० में नासिक सनातन धर्म महापरिषद् में इस विषय की पार्यालोचना की जो प्रस्ताव उस सभा में पढ़ा गया पाठकों के उत्साह के लिये उस को उद्धृत किया जाता है।

नासिक सनातनधर्म्म महापरिषद् में वक्तृता।

* पतित परावर्तन *

जो हिन्दू विधर्मी हो गये हैं उनको पुनरपि अपने धर्म्म में लेना।

मान्यवर सभापति और सभासद् महाशय!!

आप लोगों ने मुझे यह मन्तव्य प्रस्ताव करने का सम्मान

दिया है कि जो हिन्दू विवश होकर विधर्मी होगये हैं उनकी शुद्धि कर पुनरपि उनको अपने धर्म्म में ले लिया जावे। विषय नितान्त गम्भीर उत्कृष्ट प्रयोजनीय और पूर्णरूप से धार्म्मिक हैं। मैं इसकी प्रस्तावना में नितान्त अयोग्य एवं अक्षम हूं तथापि समागत महाशयों के अनुग्रह बल से बलवान् किये जाने के भरोसे पर तथा इस कार्य को सम्पादन करने के लिये खड़ा किया गया हूं। इस विचार से आप लोगों की आज्ञा पालन करने को उद्यत हूं। प्रार्थी भाव से आप लोगों के सन्मुख यथाशक्ति निवेदन करता हूं, परन्तु मैं स्वयं अक्षम हूं मुझ से त्रुटियां अवश्य होंगी आशा है कि आप लोग उनकी ओर ध्यान न देकर मुझे क्षमा करेंगे।

जगत् के सभी वर्त्तमान अथवा पूर्वकाल के नये वा पुराने धर्म्म, देश और जातियों के इतिहासों में देखा जाता है कि किसी किसी धर्म्म, जाति देश पर कभी २ घोर विपत्ति आ पड़ती है। असंख्य मनुष्यों को विवश होकर अपना धर्म्म और स्वजन मंडल त्याग कर विधर्मी और विजातीय बनना पड़ा है। यद्यपि उनकी परधर्म स्वीकार करने की इच्छा न थी। कण्ठगत प्राण होने पर ही उनको इस दुर्दशा में पड़ना पड़ा है तथापि उनका धर्म बल पूर्वक उनसे छीन कर उन को विधर्मी होना पड़ा है।

जिस समय मनुष्य निरुपाय हो जाता है, अपना धर्म और अपनी जाति की रक्षा करने के लिये अपनी दृढ़ इच्छा, अपने प्राण और अपनी तलवार एक ही मुट्ठी में लेकर जोड़ बे जोड़ का भी ध्यान भूल जाता है उस समय उसको "मरो

मारो" के सिवाय और कोई उपाय नहीं सूझता परन्तु तब भी सम्भवतः अपने को दूसरों से पराजित किया हुआ देखता है और विवश होकर अपने धर्म और जाति के लिये तिलाञ्जली देनी पड़ती है परधर्म अङ्गीकार करना पड़ता है परजाति में सम्मिलित होना पड़ता है और घोर शोक सन्ताप घृणा दुःख का भागी बनना पड़ता है। एक वीर पुरुष इसके अतिरिक्त और क्या कर सकता है?

ऐसी दशा में उनके धर्म और जाति के लोग उनके सहायक होते हैं। समय और सुकाल उपस्थित होने पर उन को फिर भी अपनी जाति और धर्म में ले लेते हैं और इस प्रकार उनके स्वधर्माभिमान, भक्ति, और अनुराग की सच्ची प्रतिष्ठा, सहानुभूति और यथार्थ आदर कर वास्तविक स्वजनत्व, आत्मीयता, पौरुपेय उदार सौहार्द न्याय का परिचय देते हैं। "जातिगङ्गा गरीयसी" यह एक सर्व मान्य लोकोक्ति है। अन्याय क्लेशित सजातीय के प्रति सहायता कर इस लोकोक्ति की अशेष मर्यादा को वे प्रत्यक्ष चरितार्थ करते हैं।

मान व जाति की न्याय सिंहासनासीनाबुद्धि में भी यह बात नहीं आती कि एक निरपराध स्वजन को दूसरों के अपराध के कारण क्यों दण्डित किया जावे। स्वधर्म में उसकी श्रद्धा, बुद्धि और अनुराग रहते हुए तथा स्वजाति में उसका अनुराग और अभिमान करते भी यदि उसका धर्म उस से छूट गया है अथवा छुड़ा लिया गया है तो पीढ़ी दरपीढ़ी के लिये उसको धर्म और जाति से बाहर निकाल कर उसको ऐसा घोर कठोर और निष्ठुर दण्ड क्यों दिया जावे।

परन्तु साम्प्रति काल में हिन्दु जाति के भीतर यह प्रथा प्रच-

लित नहीं है। साम्प्रति काल में इस लिये कहता हूं कि अतः पूर्व पतित परावर्त्तन की प्रथा प्रचलित थी । अब जब हिन्दू धर्मावलम्बी कोई समूह धर्मच्युत हुआ है तब ही तब शुद्धि करने के उपरान्त वह पुनरपि हिन्दू मण्डल में अङ्गीकार किया गया है। मैंने शङ्कर दिग्विजय पढ़ी नहीं है परन्तु प्रचलित लोक कथा कई बार सुनी है, जिस से जाना गया है कि लाखों बौद्धों को भगवान् शङ्कराचार्य ने ग्रहण कर लिया था । ब्राह्मतेज-पुञ्ज कुमारिल भट्ट ने भी ऐसा ही किया था ।

टाड साहब अपने राजस्थान के इतिहास में कहते हैं कि एक बार हिन्दू साम्राज्य सिंहासन पर महा विपत्ति पड़ी थी। उस समय हूण और मीर आदि जातीय वंशों ने हिन्दू राज-मुकुट की रक्षा करने के लिये तथा हिन्दू देश वंश और धर्म के अस्तित्व और मान मर्यादा के लिये अपने प्राण दिये थे। कदाचित् उसी उपकार के बदले सत्कार वा प्रत्युपकार करते हुए हिन्दूनरनाथ चितौरनाथ ने इन्हें अपना बना लिया और हिन्दू राजवंशों के ३६ प्रशस्त प्रमुख राजवंशों में इन की गणना की ।

अस्तु वही बात अब भी है। अनेक हिन्दू राजवंश राजा महाराजा सेठ साहूकार प्रभुत्वशाली वर्त्तमान प्राचीन आचार्यों की अनेक गद्दियां अब भी हिन्दू धर्म पर अपना शासन और गौरव सम्पादन कर रही हैं। धर्मधुरन्धर महात्मा पण्डित-गण आज भी प्रायः सर्वत्र उन्हें सविनीत मस्तक प्रणाम कर उनके आदेश की राह देखते हैं। अतएव समझ में नहीं आता कि ऐसा अवसर क्यों छोड़ा जावे। अपने धार्मिक और सामा-जिक बल का कुछ कम प्रभाव नहीं है समाचारपत्र समुदाय

की एक नयी और सार्वजनिक शक्तिकेन्द्र का आविर्भाव होने पर भी वृटिश गवर्नमेण्ट की शान्ति स्थापित धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त साम्राज्य में भी हम लोग यदि इस विषय को नहीं उठावें तो फिर इससे अच्छा और कौनसा अवसर होगा।

हर्ष की बात है कि उस समय के लिये अब बहुत दिन तक ठहरना नहीं पड़ेगा। श्रीसनातन भारतधर्म महापरिषद् ने उस विषय को उठाया है और आशा है कि उस में पूर्ण सफलता होगी। अब यह देखना चाहिये कि शुद्धि के लिये कौन से समूह हैं और इसके प्रचार के लिये कौन कौन से उपायों का अवलम्बन करना होगा।

अभी थोड़े दिन हुए जोधपुर के राजपद प्रतिष्ठा प्राप्त विद्वद्वर मुंशी देवीसहायजी ने एक पुरानी पुस्तक जोधपुर राज पुस्तकालय से प्राप्त कर उसका भाषानुवाद छपाया है। हमारे "भारत मित्र के" सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने इस पुस्तक की समालोचना की है। इससे बहुत सी बातों का ज्ञान प्राप्त होता है। उसमें एक विषय यह भी है कि बहुत से क्षत्रिय राजपूत आदि उच्च कुल के हिन्दू लोग मुसलमान बादशाहों द्वारा बलात् मुसलमान बनाये जाने से बचने के लिये और कुछ उपाय न देखकर सब जनेऊ उतार २ शूद्र बन गये और माली इत्यादि का काम करने लगे। राजपूताने में कई गांव ऐसे प्रशंसनीय हिन्दू धर्म्माभिमानी हिन्दू वंशों के हैं। इधर मथुराजी में बहुत से ब्राह्मण ऐसे ही कारणों से बढ़ई का काम करने लगे और बढ़ई हो गये और अपने २ मूल द्विजातीय शाखाओं से सम्बन्ध छोड़ दिया।

ऐसे ही फिर मथुरा आगरा की ओर एक जाति "मल-

खान " नाम से प्रसिद्ध है। इन के गले में तुलसी की माला पड़ी है धोती कटि प्रदेश में विराज रही है । रामनाम मुंह में और हृदय में विराज रहा है । खाना पीना देखिये तो वही चौके में पीढ़े पर बैठे हुए हिन्दू रीति नीति से होरहा है। पर इन हिन्दू धर्माभिमानी वीरों से पूछिये कि कौन जाति हो तो कहते हैं कि मुसलमान हैं? बेचारे हमारे वह भाई और क्या कहैं जब उन्हें हम अपना नहीं कहते। वह हिन्दू होना भी चाहते हैं जिसके वह कुल वृक्ष हैं पर हम लोग उन्हें पराया ही रक्खा चाहते हैं अपनी ही सन्तान को मुसलमान रखना चाहते हैं तो वे और क्या बनें?

उस समय सम्भव था कि हिन्दूजाति इनके इस स्वधर्म और स्वजाति के अभिमान और अनुराग का पुरस्कार उन्हें न दे सकी हो फिर वही धार्मिक सामाजिक पद प्रतिष्ठा मान गौरव और स्वत्वाधिकार न देने का कोई विशेष कारण हो। संभव है कि हिन्दूजाति ने यह सोचा हो कि यह बहादुर लोग जो छिप छिपा कर भी हिन्दू बना रहना चाहते हैं और मुसलमानी बादशाही लालच में अथवा उसके धार्मिक समान पद प्रलोभन में आकर अपना धर्म छोड़ने की कायरता नहीं दिखलाया चाहते वह यदि पुनः अपने उस द्विजातीय पद मर्य्यादा प्रतिष्ठित और स्थापित कर दिये जांय तो उनका अभीष्ट ही न सिद्ध हो क्योंकि इस बात के प्रकाश होजाने पर उस समय के मुसलमान जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को ढूंढ़ २ कर जबरदस्ती मुसलमान बना दिया करते थे इन बेचारों को भी द्विजाति जान कर हिन्दू न रहने देते और मुसलमान बना

डालते । अन्तु हिन्दू जाति के अग्रणी लोगों ने ऐसे दुरवसर पर चुप रहना ही उचित और नीति युक्त समझा ।

परन्तु अब वह बात नहीं है । बृटिश गवर्नमेएट का सुराज्य है । बाघ बकरी एकही घाट पानी पी रहे हैं । क्या ऐसे अवसर में भी वह अपने इस पीढ़ी दर पीढ़ी के स्वधर्माभिमान स्वजात्याभिमान का आदर प्रतिष्ठा हिन्दू जाति से न पावेंगे। उस समय जो द्विजाति हिन्दू मुसलमान होजाता था उसे बादशाह की ओर से उसकी हैसियत से कई गुनी बड़ी सम्पत्ति जागीर वा नौकरी के रूप में दीजाती थी । इस धन का लोभ न कर, इस की चिन्ता न कर द्विजाति से शूद्र बन कर भी उन लोगों ने अपना धर्म रक्खा अपने हिन्दू होने का अभिमान रक्खा । क्या यह थोड़े आत्मिक साहस (Courage) और थोड़े आत्मिक बल (Moral Force) का काम है ? प्राणी सभी तो योद्धा नहीं होते और न सब को युद्ध विद्या आती है कि लड़कर प्राण दे देते । अस्तु इनका आध्यात्मिक बल प्रशंसा और पुरस्कार के योग्य है । सुतरां अपने पूर्व्वपद गौरव में पुनः प्रतिष्ठित कर दिए जाने के अतिरिक्त और किसी प्रकार से हमारी समझ में हमारी धर्म और न्याय वीर हिन्दू जाति उनके दृढ़ पुरुषार्थ वा उनके स्वधर्म भक्ति और ममत्व का सन्मान तथा प्रत्युपकार नहीं कर सकी ?

ऐसे शूरवीर पतितों की फिर से शुद्धिकर धर्म वा जाति में लेने की आज्ञा है—वा नहीं यह मैं नहीं जानता । मैं संस्कृत और धर्मशास्त्र से नितान्त अनभिज्ञ हूं और जो कुछ पण्डित गुरुजनों की सेवा में प्रार्थना कर रहा हूं—वह आप सब जानते

हैं। परन्तु अनुमान ऐसा ही है कि ऐसा कोई प्रमाण अवश्य होगा। धर्म्मशास्त्र में लिखा है—कि ऐसी सवारी जिसमें एक सहस्र से अधिक लोहे के कीले कांटे लगे हों तो उसमें बैठ कर खाने पीने से छुआ छूत का दोष नही लगता और पुरुष धर्म्मभ्रष्ट नहीं होता क्योंकि यह अशक्यता और विवशता की बात होजाती है। इसके अतिरिक्त आप लोग सब जानते हैं कि महर्षि विश्वामित्र ने एक समय दुर्भिक्ष पड़ने पर अन्न न मिलने पर चाण्डाल के घर जाकर कुत्ते का मांस खाकर प्राण रक्षा की थी। वह इतने बड़े ब्रह्मतेज पूर्ण तपोबल वाले थे कि वह चाहते तो अपने तपोबल से करोड़ों मन अन्न उप-स्थित कर सक्ते थे अथवा अपने तपोबल से दो चार दिन क्या दो चार वर्ष बिना कुछ खाए पीए केवल वायु भक्षण कर प्राण रक्षा कर सक्ते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया और चाण्डाल के बतला देने पर भी तथा उसके निवारण करने पर भी कुत्ते का मांस खाकर ही अपने प्राणों की रक्षा करनी चाही इसी लिए कि उन्होंने देखा कि ऐसा करने से कुछ हानि नहीं है न धर्म्म वा जाति से पतित होना ही है आपत्तिकाल में मनुष्य विवश होकर किसी प्रकार अपनी रक्षा करता है यह उसका स्वाभाविक नियम है, अस्तु जो काम मनुष्य का साधारण वा स्वाभाविक नियम से निकल जाना सम्भव है उसके लिये तपोबल का प्रयोग करना वा धर्म की दुहाई मचाना मानो आडम्बरात्याचारका प्रचार कराने के लिये उदारण बनना है। जो सर्वदा ऋषियों को इष्ट नहीं है।

अस्तु जब द्वापर त्रेता में ऐसा नियम सिद्ध होता है तो कलियुग में जब कि प्रजा दिनों दिन दुर्बल होती जाती है तो क्या उसे दयाशील विधि का अधिकारी होना अनुचित होगा? फिर जब अन्याय और अत्याचार द्वारा बलात् विधर्मीय बनाया गया हो तो उसे पुनः अपने धर्म्म और जाति में स्थापित कर देना और भी न्याययुक्त बोध होता है। क्योंकि ऐसा न होने से जिज्ञासा देवी प्रश्न उठाती है कि किसने सच-मुच अन्याय अत्याचार किया उस विधर्म्मीय उस पराए ने जिसने इसका ज़बरदस्ती इसका धर्म छुड़ा कर विधर्म्मीय बना दिया परन्तु "अपना" बना लिया! अथवा इस स्वध-र्म्मी सजातीय ने जिसने अपने एक स्वधर्म्मीय को अपनी जाति पांति में नहीं रक्खा क्योंकि (१) किसी पराए ने उसे बलात् "वेधर्म" कर दिया। (२) उसे पराया मानना आरम्भ कर दिया। यद्यपि वह बेचारा हिन्दू रहने के लिए उत्क-ण्ठित है और अपनी लाचारी से लाचार है। कहिये कौन अत्याचारी है हम स्वयं या वह विधर्मीय विजातीय?

निदान मैं अब अधिक दीर्घ सूचना अपनी विनती में नहीं किया चाहता। और यह कहकर अन्त करता हूं कि आप महाशय गण! पतितपरावर्त्तन पर ध्यान दें जिससे यह कार्य सफल हो। शक्तिकेन्द्र भी यही समझें कि हिन्दू सर्वसाधारण सच्चे धर्मानुरोध से सहानुभूति और कल्याणेच्छा से अपनी उन्नति के लिये उन शक्तिकेन्द्रों से यह आशा लाभ करने के

प्रार्थी हैं। इस लिये प्रत्येक पढ़े लिखे हिन्दु सन्तान का काम है कि कुछ आर्थिक सहायता करके श्रीसनातन भारतधर्म परिषद् में एक फ़ण्ड स्थापित करा दे जिस में उन उन शक्ति केन्द्रों से लिखा पढ़ी आरम्भ करदें और काम पूरा पड़े। और उद्योग इस कार्य्य की सफलता के लिये करने पड़ेंगे उसे विशेष कमेटी स्थिर करेगी। इत्यलम्।

जय विजय नारायणसिंह वरांव। (वेङ्कटेश्वर)

पुराणों में १० सहस्र मुसलमानों की शुद्धि।

इस समय जब कोई मुसलमान वा अङ्गरेज शुद्ध होता है तो कई एक धर्मानभिज्ञ लोग कह उठते हैं कि यह भ्रष्टाचार है अधर्म है इत्यादि।

उन लोगों को दर्शाने के लिये पुराणों का एक इतिहास उद्धृत किया जाता है, ताकि उन भोले हिन्दुओं को प्रतीत हो को उनके पूर्वजों ने न केवल अपने देश में प्रत्युत दूसरे देशों में जाकर अपने पवित्र धर्म के प्रभाव से सहस्रों मुसलमानों को शुद्ध कर शूद्र वैश्य और क्षत्रिय की पदवियें दीं।

देखो भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व खं० ४ अ० २१।

सरस्वत्याज्ञया कण्वो मिश्र देशमुपाययौ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्य तदा दशसहस्रकान्
वशी कृत्य स्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्त्तमहोत्तमे।

ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टवुश्च सरस्वतीम् ।१७।
पञ्च वर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती ।
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छान् शूद्रवर्णायचाकरोत्।१८
कार वृतिकराः सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः ।
द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्याः बभूविरे ।१९।
तन्मध्ये चाचार्यं पृथुर्नाम्ना कश्यपसेवकः ।
तपसा च तुष्टाव द्वादशाब्दं महामुनिम् । २०।
तदा प्रसन्नो भगवान् कण्वो वेदविदांवरः ।
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरंददौ । २१ ।

सरस्वती (विद्या) की प्रेरणा से कण्व ऋषि मिश्र देश में गया और वहां दश हज़ार म्लेच्छों को शुद्ध कर और पढ़ा कर और अपने वशीभूत करके पवित्र ब्रह्मावर्त्त में लाया।

उन संस्कृत म्लेच्छों ने तप से देवी सरस्वती को प्रसन्न किया और पांचवें वर्ष प्रसन्न हो कर देवी ने उन को शूद्र वर्ण दिया अनन्तर उन में से दो हज़ार को वैश्य की पदवी दीगई।

उन में से एक पृथु नाम ने बारह वर्ष पर्य्यन्त आचार्य्य की सेवा की तब प्रसन्न हुए वेदवेत्ता कण्व ने उस को राजा (क्षत्रिय) बनाया और राजपुत्र नाम नगर दिया उसी का आगे मागध पुत्र हुआ जिस से मगधराज्य की नींव पड़ी।

इसी के श्लोक ३१ से जब कलियुग को २७०० वर्ष बीते तब बौद्धमत प्रवर्त्तक शाक्यसिंह का गुरु :-

नाम्नागौत्तमाचार्यो दैत्यपक्ष विवर्द्धकः।
सर्व तीर्थेषु तेनैव यंत्राणि स्थापितानिवै।३३।
तेषां मध्ये गता ये तु बौद्धाश्चासन् समंततः।
शिखा सूत्र विहीनाश्च बभूवुर्वर्ण संकराः।३४।
दशकोट्यः स्मृताः आर्य्याः बभूवुर्बौद्ध पन्थिनः
पंच लक्षास्तदा शेषाः प्रययुर्गिरि मूर्द्धनि।३५।
चतुर्वेद प्रभावेन राजन्याः वन्हिवंशजाः।
चत्वारिंश भवायोद्धास्तैश्चबौद्धाःसमुज्झिताः३६
आर्य्यास्तॉंस्ते तु संस्कृत्य विन्ध्याद्रेर्दक्षिणे कृतान्।
तत्रैव स्थापयामासुर्वर्ण रूपान् समंततः।३७।

गौतम आचार्य्य हुआ, उसने सम्पूर्ण तीर्थों पर मठ नियत किये। जो लोग उस के वश में गये सब बौद्ध हो गये, और सब ने शिखा सूत्र का परित्याग कर दिया। इस प्रकार दश करोड़ आर्य बौद्ध बन गये। तब शेष पांच लक्ष आर्य जो बौद्ध नहीं बने थे वह आबू पहाड़ पर गये और वहां हवन किया

(इसी के प्रथम खण्ड में विषय व्याख्या देखिये) वहां चतुर्वेद के प्रभाव से अग्नि वंशज राजाओं ने बौद्धों को काटा। इन पतितों को पुनः शुद्ध कर और वर्णाश्रमी बना कर आर्य धर्म में स्थित किया।

इसी के आगे श्लोक ५८ से बतलाया है कि जब आर्यावर्त्त में म्लेच्छों का राज्य हो गया और म्लेच्छों ने भी बौद्धों के तुल्य।

यंत्राणि कारयामासुः सप्तष्वेव पुरीषु च।
तदधो ये गता लोकास्सर्वेते म्लेच्छतां गताः।५२
महत्कोलाहलं जातमार्याणां शोककारिणाम्।

सातों पुरी में अर्थात् जगन्नाथ आदि प्रसिद्ध नगरों में अपनी मसजिदें बनालीं जो उनके वश में आये म्लेच्छ बन गये तब तमाम आर्यों में एक कोलाहल मच गया।

श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्ण चैतन्य सेवकाः।
दिव्यं मंत्रं गुरोश्चैव पठित्वा ययुः पुरीः।

तब वैष्णव धर्म्मानुयायी कृष्ण चैतन्य के सेवक अपने गुरु से योग्य शिक्षा लेकर सातों पुरियों में फैल गये।

रामानन्दस्य शिष्योवै चायोध्यायामुपागतः।
कृत्वा विलोमं तं मंत्रं वैष्णवाँस्तानकारयत्॥

भाले त्रिशूल चिन्हं च श्वेत रक्तं तदाभवत् ।
कण्ठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता ॥
म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्द प्रभावतः ।
आर्य्याश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे ॥

उन में से रामानन्द का शिष्य अयोध्या में गया । और वहां म्लेच्छों के उपदेशों को खण्डन कर उनको वैष्णव धर्म्मी बनाया माथे में त्रिशूलाकार तिलक दिया । गले में तुलसी की माला पहरा राम नाम का उपदेश दिया वह सम्पूर्ण म्लेच्छ रामानन्द के प्रभाव से वैष्णव बने । और शेप आर्य अयोध्या में रहने लगे ।

निम्बादित्योगतो धीमान् सशिष्यः कांचिकांपुरीम्
म्लेच्छ यंत्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह ।५८।
विलोमं स्वगुरोर्मंत्रं कृत्वा तत्र स चावसत् ।
वंशपत्र समारेखा ललाटे कण्ठमालिका ।५९।
गोपी बल्लभ मंत्रोहि मुखे तेषां रराजसः ।
तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्च बभूविरे ।
म्लेच्छाः संयोगिनो ज्ञेया आर्यास्तन्मार्ग वैष्णवाः

बुद्धिमान् निम्बादित्य कांची में गया और वहां पर म्लेच्छों के विरुद्ध उपदेश कर और सब को अपने वश में करके वैष्णव बना आया। उनके मस्तक में वंश पत्र के तुल्य तिलक कण्ठ में माला तथा गोपी वल्लभ का मन्त्र सिखाता हुआ और वह सब वैष्णव बने।

विष्णु स्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगणैर्वृतः।
तत्रस्थितं महामंत्रं विलोमं तच्चकार ह ॥
तदधो ये गता लोका आसन् सर्वे च वैष्णवाः।

विष्णु स्वामी हरिद्वार में गया और वहां म्लेच्छों के विरुद्ध प्रचार कर सब को वैष्णव बनाया। एवं वाणी भूषण आदि विद्वानों ने काशी आदि स्थानों में जाकर सहस्रों म्लेच्छों को शुद्ध किया।

अंत्यजों का परिवर्तन।

वंशानुगत (मौरूसी) वर्णाभिमान से आर्य्य जाति की जो हानि हुई उस को कौन विज्ञ पुरुष नहीं जानता। कौन नहीं जानता कि इस खानदानी जात्याभिमान ने ही ब्राह्मणों को वेद विहीन कर अपने वृत्त से पतित किया। कौन नहीं जानता कि स्वश्लाघी जात्याभिमानियों की घृणा और उदासीनता से सहस्रों अन पवित्र आर्य धर्म्म से वियुक्त हुए। क्योंकि वर्त्तमान वंशानुगत निर्मूल जातपात के नियमानुसार एक छोटी जाति का पुत्र कभी ऊंचा नहीं हो सकता। चाहे वह कितना ही विद्वान् और सदाचारी क्यों न हो। उस का

स्पर्श दोष दूर नहीं होता चाहे उसका आहार आचार और व्यवहार एक मौरूसी ब्राह्मण से भी पवित्र क्यों न हो, परन्तु प्राचीन समय में यह बात नहीं थी, क्योंकि रजक तथा चमार आदि जिनको अन्त्यज वा नीच कहा जाता है यह कोई भिन्न जाति नहीं है प्रत्युत ब्राह्मण क्षत्रिय आदि के व्यभिचार से उत्पन्न हुए संस्कार हीन पुरुष विशेषों की संज्ञा है जैसा कि निम्न लिखित प्रमाणों से ज्ञात हो जाता है।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्या द्वै देहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चांडालः सर्व धर्म्म वहिष्कृतः॥

(या० प्रा० प्र० ३)

क्षत्रिय से ब्राह्मणी में जो पैदा हो वह सूत कहा जाता है वैश्य से ब्राह्मणी में जो पैदा हो वह वैदेहिक और शूद्र से जो पैदा हो वह चांडाल कहा जाता है जो सर्व धर्म्म से वहिष्कृत होता है।

सूताद्विप्रसुतायां सुतो वेणुक उच्यते।
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्च चर्म्मकारकः॥

(औशनस स्मृतिः-१।४)

सूत से जो ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न हो उसको वेणुक (वरूड़) कहते हैं। और इसी सूत से क्षत्रिय कन्या में जो हो उसको चर्मकार (चमार) कहते हैं।

चांडालाद्वैश्य कन्यायां जातः श्वपच उच्यते।
श्वमांस भक्षणं तेषां श्वान एवं च तद्बलम् ॥
(औशनस० १ । ११)

चांडाल से जो वैश्य की कन्या में उत्पन्न हो उस को श्वपच कहते हैं कुत्ते का मांस उसका भक्षण है और कुत्ता ही उस का बल है।

नृपायां वैश्य संसर्गाद् योगव इति स्मृता।
तन्तुवायाः भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः। १२
शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते।
अयोगवेन विप्रायां जाता स्ताम्रोपजीविनः।१३
(औशनस)

क्षत्रिय की कन्या में जो वैश्य से पैदा हो उसको आयोगव (जुलाहा) कहते हैं। वह कपड़े बुनने और कांसे के व्योपार (कसेरापन) से जीविका करें। इन में से जो वस्त्र पर रेशम आदि से कसीदा निकालते हैं वह शीलिक कहाते हैं। आयोगव से जो ब्राह्मण की कन्या में हों उस को ठठेरा कहा जाता है।

नृपायां शूद्र संसर्गाज्जातः पुल्कस उच्यते।
सुरावृत्तिं समारूह्य मधुविक्रय कर्मणः। १७।
(औशनस १)

क्षत्रिय की कन्या में शूद्र से जो पैदा हो उसको पुल्कस (कलाल) कहते हैं यह सुरा (शराब) से जीविका करता है।

पुल्कसाद्वैश्य कन्यायां जातोरजक उच्यते ।१८

पुल्कस से वैश्य की कन्या में जो पैदा हो उसे रजक (लिलारी) कहते हैं।

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ।
वैश्यायां शूद्रश्चौर्याज्जातश्चक्री च उच्यते ॥२२॥

वैदेहिक (गड़रिया) से क्षत्रिय की कन्या में जो पैदा हो उसे सूचिक (दरजी) वा पाचक रसोइया (सूद) कहते हैं। शूद्र से जो वैश्य की कन्या में चोरी से पैदा हो उसे चक्री (तेली) सारथी कहते हैं।

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुम्भकारः स उच्यते॥३२॥

वैश्य की कन्या में जो चोरी से ब्राह्मण पैदा करे उसे कुम्हार कहा जाता है।

सूचकाद्विप्र कन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ।
शिल्पकर्म्माणि चान्यानि प्रासाद लक्षणं तथा ॥

दरजी से ब्राह्मण की कन्या में जो पैदा हो उसे तक्षक (बढ़ई) कहते हैं उसका काम (शिल्प) चित्रकारी वा मकान बनाना है।

इत्यादि प्रमाणों से प्रतीत होता है कि वह इन प्रत्येक व्यवसायियों की कोई भिन्न जाति नहीं। धर्म शास्त्र और इति-

हासों के देखने से प्रतीत होता है कि जहां एक तरफ आर्य-जाति ने एक क्रिया भ्रष्ट दुराचारी को आर्य्यजाति से बाहिर कर और दण्डरूप से उसे निन्दित कर्म्मों में नियुक्त करके सदाचार को स्थिर रखने का प्रयत्न किया, वहां दूसरी ओर गुण कर्म्म और सदाचार के कारण एक नीच सन्तान को (वृत्तेनहिभवेद्द्विजः) के अनुसार अपना शिरोमणि बना आर्य वृत्त को ऊंचा किया। जैसे वाल्मीकि आदि।

शास्त्र पर्य्यालोचना से न केवल यह सिद्ध होता है कि वाल्मीक आदि अनेक नीच गृहोत्पन्न सदाचार से ऊंचे हुए। प्रत्युत यह भी निस्सन्देह मानना पड़ता है कि समयानुसार उनकी संज्ञा और कर्म में भी परिवर्तन होता रहा है।

कालवशात् जब कभी देश की पोलिटिकल अवस्था का परिवर्त्तन होता है, तो उसके साथ ही सोशियल अथवा सामाजिक नियमों में कुछ न कुछ परिवर्त्तन होने लगता है। और ऐसा होना अवश्यं भावी है। जो जाति देश कालानुसार समय के साथ साथ नहीं चलती वह जीती नहीं रह सकती। यही भाव था कि जिसने समय २ में ऋषियों को प्रद्योतित किया कि वह समयानुसार अपनी २ व्यवस्था दें, और यही कारण भिन्न २ स्मृतियों के लिखने का है। इसी की पुष्टि में पराशर ऋषि अपनी स्मृति के प्रारम्भ में बतलाता है, कि:—

अन्येकृतयुगे धर्म्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुसारतः॥

(परा० १—२२)

सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग में धार्मिक व्यवस्था एक सी नहीं होती। इसी नियमानुसार समयान्तर में अन्त्यजों की संज्ञा संख्या तथा कर्म्म आदिकों में परिवर्तन किया गया। जैसा कि आगे के उदाहरणों से प्रतीत होगा।

शास्त्रों में यद्यपि अनेक प्रकार के पुत्रों का वर्णन है तथापि उत्पत्ति भेद से चार भेद कहे जा सकते हैं। प्रथम सवर्णी अर्थात् तुल्य वर्ण के स्त्री पुरुषों से उत्पन्न हुई सन्तान। दूसरा अनुलोमज अर्थात् उत्तम वर्णी पुरुष का हीन वर्णी स्त्री से उत्पन्न। तीसरा प्रतिलोमज अर्थात् हीन वर्णी पुरुष से उत्तम वर्ण स्त्री से प्राप्त हुआ। चतुर्थ संकर अर्थात् पूर्वोक्त अनुलोमज प्रतिलोमजों से व्यभिचार रूप से सन्तानोत्पत्ति।

प्रतिलोमजों का वर्णन करते हुए मनु याज्ञवल्क्यादि लिखते हैं:—

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वै देहिकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्व धर्म वहिष्कृतः॥

(याज्ञवल्क्य ९३)

क्षत्रिय से ब्राह्मणी का पुत्र सूत नाम होता है। वैश्य से वैदेहिक, और शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ २ चाण्डाल कहाता है जो कि सर्व धर्म्मों से बहिष्कृत है।

समीक्षा—मनु ने इन सूत मागध और वैदेह को अपसद व करार देकर लिखा कि:—

सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सकम् ।
वैदेहिकानां स्त्रीकार्य्यं मागधानां वणिक्पथः ॥

(मनु० १०-४७)

सूतों का काम सारथिपन (सार्इसी करना) अम्बष्ठों का चिकित्सा वैदेहिकों का अन्तःपुर का काम और मागधों का स्थल मार्ग से व्यापार करना है। इसी आशय को लेकर मध्यमाङ्गिरा ने तो इनको साफ अन्त्यज ही लिख दिया। जैसे:—

चांडालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहिकस्तथा ।
मागधा योगवौ चैव सप्तैतेंऽत्यावसायिनः ॥

चण्डाल, श्वपच, क्षत्ता-सूत, वैदेहिक, अयोगव (वढ़ई) यह सात नीच हैं। परन्तु समय के परिवर्त्तन से एक समय आया जब कि करीब करीब इन सब का परिवर्त्तन हुआ। तब उशनाचार्य ने सूत के विषय में व्यवस्था दीः—

नृपाद् ब्रह्मकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ।
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रातिलोम विधिद्विजः।
वेदानर्हस्तथा चैषां धर्म्माणा मनुबोधकः ।

(औशनश अ० १-श्लो०-३)

ब्राह्मण की कन्या में विवाह होने से क्षत्रिय द्वारा जो पुत्र होता है वह सूत कहाता है। और वह प्रतिलोम विधि का

द्विज है। उसको वेद का अधिकार नहीं है। परन्तु वह धर्मों का उपदेश कर सकता है।

यही सूत महाराजा दशरथ का प्रधान मंत्री बना जोकि बिना द्विजातियों के नहीं होसक्ता। और पुराणों के समय में इस सूत को इतनी उच्च पदवी दीगई कि सूत ने व्यास गद्दी पर बैठ ऋषियों को सम्पूर्ण पुराण सुनाए। पुराणवक्ता सूत ने भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय १८ में इस बात को हर्ष और अभिमान से प्रकट किया है, कि मैंने प्रतिलोमज होकर भी ईश्वर भक्ति आदि गुणों से उच्च पदवी पाई। एवं ययाति ने ब्राह्मण कन्या से विवाह किया और उस की सन्तान क्षत्रिय बनी।

आगे मनु अ० १०—श्लो० १२ में लिखा है कि:—

शूद्रादा योगवः क्षत्ता चांडालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्य राजन्यविप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः॥

शूद्र से वैश्या में अयोगव-शूद्र से क्षत्रिया में क्षत्ता और ब्राह्मणी में चाण्डाल पैदा होता है, और यह वर्ण संकर हैं। आगे श्लोक १६ में इन तीनों को अधम मान कर इनकी वृत्ति का वर्णन करते हुए लिखा कि:—

(त्वष्टिस्त्वा योगवस्यच। मनु १०—श्लोक ४८)

क्षत्तुग्र पुक्कसानांतु बिलोको वध बन्धनम्। ४९

अयोगव का काम लकड़ी छिलना (बढ़ई का कर्म्म करना) है। और क्षत्ता का काम बिल में रहने वाले गोधा

आदि जीवों का पकड़ना और बांधना है। परन्तु समय के परिवर्त्तन से इनकी संज्ञा उत्पत्ति और वृत्ति में परिवर्त्तन किया गया।

उशनाचार्य अपनी स्मृति के श्लोक बारह में लिखता है कि:—

नृपायां वैश्य संसर्गादायोगव इतिस्मृतः।
तन्तुवाया भवन्त्येव वसुकांस्योपजीविनः॥

क्षत्रिय की कन्या में जो वैश्य से उत्पन्न हो आयोगव (जुलाहा) कहाता है और उसका काम कपड़ा बुनना वा (कांस्योपजीवन) अर्थात् भांडे बेचना (कसेरापन) है।

एवं आगे श्लोक ४२ में बतलाया कि:—

शूद्रायां वैश्य संसर्गाद्विधिना सूचकः स्मृतः।
सूचकाद्विप्र कन्यायां जातस्तक्षक उच्यते॥

विधि से विवाही शूद्र कन्या में जो वैश्य से उत्पन्न हो उस को सूचक (दरजी) कहते हैं। और सूचक से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न तक्षक (बढ़ई) कहा जाता है।

कहां मनु के समय में शूद्र से उत्पन्न आयोगव वा क्षत्ता का काम बढ़ईपन, और कहां उशनस् के समय सूचकोत्पन्न तक्षक।

मनु तथा याज्ञवल्क्य की व्यवस्था थी कि:—

निषाधः शूद्र कन्यायां यः पारशव उच्यते।

मनु० १०—८

ब्राह्मण से शूद्र कन्या में पैदा हुए की निषाध संज्ञा है, जिस का दूसरा नाम पारशव है, और आगे श्लोक-१२ में शूद्र से क्षत्रिया में जो उत्पन्न हो उसे क्षत्ता कहा है परन्तु महाभारत के समय में इसका व्यतिक्रम होगया। क्योंकि व्यास से दासी में उत्पन्न हुए विदुर की निषाध संज्ञा नहीं थी, प्रत्युत क्षत्ता थी।

इसी की पुष्टि में भारत के अनुशासन पर्व अध्याय ४८. श्लोक बारह में लिखा है (शूद्रान्निषाधोमत्स्यघ्नः क्षत्रियायांव्यतिक्रमात्) इसके भाष्य में टीकाकार लिखता है:—

" अत्र मनुना निषेधोऽनुलोजेषु क्षत्ताच प्रतिलोमजेषूक्तः। व्यासेनतु विपरीत मुक्तं विदुरे क्षतृ शब्दं तत्रतत्र प्रयुंजानेन। अतएव शूद्रायां निषाधोजातः पारशवोऽपिवा, क्षत्रिया मागंध वैश्यात् शूद्रात् क्षत्तार मेववा, इति याज्ञवल्क्य उभयत्र वा शब्दं पठन् अनयो निषाधत्वक्षतृत्वे सूचयति तेन विप्रात् शूद्रायां क्षत्ता क्षत्रियायां निषाध इत्यर्थ साधुता।

मनु ने निषाध को अनुलोमजों में लिखा है, और क्षत्ता को प्रतिलोमजों में। परन्तु व्यास ने इसके विपरीत लिखा है क्योंकि विदुर के लिये जहां तहां क्षत्ता शब्द दिया है।

अपने पक्ष के समर्थन में याज्ञवल्क्य दो श्लोकों की व्यवस्था लगा कर कहता है कि जो श्लोक-६१-९४ में या शब्द का प्रयोग किया है, इससे भी मालूम होता है कि ब्राह्मण से शूद्र कन्या में उत्पन्न की क्षत्ता—और शूद्र से क्षत्रिया में उत्पन्न की निषाध संज्ञा भी यह मानते हैं।

यदि ब्राह्मण से शूद्र कन्या में उत्पन्न हुआ निषाध ही रहता तो व्यास आदि भी ब्राह्मण न बनते । परन्तु इतिहास बतलाता है कि:--

जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः ॥

कैवर्त (दास) की कन्या में उत्पन्न व्यास-तथा श्वपाकी (चांडाली) से उत्पन्न पराशर, तथा और बहुत कर्म वश से ब्राह्मण बने जो प्रथम इतर थे ।

मनु कहता है कि:—

वृषली फेन पीतस्य निश्वासोपहतस्यच ।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥

मनु ३—१९

वृषली के मुख चुम्बन करने वाले को उसके मुख का श्वास लेने वाले तथा वृषली में उत्पन्न की शुद्धि नहीं।

वृषली का अर्थ करते हुए अंगिरा ऋषि लिखता है कि

(चांडाली वंधनी वेश्या) चाण्डाली वंधनी और वेश्या आदि पांच वृषली संज्ञिक हैं।

परन्तु इतिहास बतलाता है कि:—

गणिका गर्भ सम्भूतो वशिष्टश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥

वेश्या के गर्भ से उत्पन्न वशिष्ट मुनि तप से ब्राह्मण बना, संस्कार ही इसमें कारण हैं। अर्थात् यदि कर्म उच्च हों तो योनि दोष नहीं रहता।

दूर क्यों जांये तनिक वर्त्तमान दशा की ओर दृष्टि दें मनु ने अ० १० श्लोक ११ में लिखा है कि वेश्या से क्षत्रिया में जो सन्तान उत्पन्न हो वह मागध संज्ञिक होती है और आगे श्लोक १७ में उसको अपसद लिखा। इसी को मध्यम अंगिरा ने अन्त्यावसायी लिखा इसके विषय में भारत अनुशासन पर्व अध्याय ४८ में लिखा कि :—

चतुरो मागधीसूते क्रूरान्मायोप जीविनः।
मासं स्वादुकरं क्षौद्रं सौगन्धमिति विश्रुतम् ॥

मागधी चार पुत्र उत्पन्न करती है जिन का काम मांसादि बेचना है और उन में (क्षौद्र, सूद, और शूद्र) ये तीनों एक के नाम हैं और उन का काम शाक आदि बनाना तथा अन्न बनाना है। कोशों ने इसकी व्युत्पत्ति करते हुए लिखा कि (सूदन्ति छागानितिसूदः) इस क्षौद्र वा सूद का काम बकरों

को मारना है परन्तु राजाओं के संसर्ग तथा कर्म की उत्तमता से आज सूद द्विज हैं।

व्यास ने :—

वर्द्धकोनापितो गोप आशायाः कुम्भकारकः।
वणिक् किरात कायस्थमालाकार कुटुम्बिनः॥

व्यास–१–१०

व्याज लेने वालों, नाई, गोप, और वणियां तक को अन्त्यज लिख दिया। परन्तु इसी व्यास ने ३। ५१ में लिखा है कि :—

नापितान्वयमित्रार्द्ध सीरिणोदास गोपकः।
शूद्राणामप्यमीषान्तु भुक्त्वाऽन्नं नैवदुष्यति॥

नाई, वाहक, दास (कैवर्त्त) गोप, आदि के अन्न खाने में दोष नहीं। यही व्यवस्था पराशर ११–२२ में (दास नापित गोपालों) को दी है। न केवल अन्न खाने का अधिकार दिया गया, प्रत्युत नाई तथा निषाध आदि कई एक को तो वेद मंत्र पढ़ने का भी अधिकार दे दिया। जैसे :—

आचान्तोदकाय गौरिति नापित स्त्री ब्रूयात्॥

गोभिलीय० गृ० सू० प्र० ४

ऊपर निवेदन किया गया कि मध्यम अंगिरा ने सूत और क्षत्ता आदि को भी अन्त्यज माना। व्यास ने अपने समय में ब्याज लेने वाला आदि को अन्त्यज माना, परन्तु समय के

परिवर्त्तन से पीछे के अत्रि, अंगिरा, यम, आदि स्मृतिकारों ने इन सब को काट कर :—

रजकश्चर्म कारश्च नटो वरुड एव च।
कैवर्त्त भेद भिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यजाः स्मृताः॥

केवल रजक (छिलारी) चमार, नट वरुड़ (बांस बनाने वाले) कैवर्त्त, मल्लाह, भेद तथा भील को अन्त्यज माना। देखो अत्रिस्मृतिः श्लोक १९९ अंगिरा श्लोक २ यम श्लोक ३२ और हम देखते हैं कि वर्त्तमान समय में व्यास के कथनानुसार गोप आदि को अन्त्यज नहीं माना जाता मनु ने अध्याय ४ श्लोक २१० वा २१५ में लिखा कि गाने वाले तथा नाचने वाले का अन्न नहीं खाना चाहिये परन्तु समय के परिवर्त्तन से पद्मपुराण ब्र० ख० ३ अ० ६ में लिखा है कि :—

कुशीलवः कुम्भकरश्च क्षेत्र कर्मक एवच।
एते शूद्रेषु भोज्यान्नादृष्ट्वास्वल्पगुण वुधैः॥१७

नाचने वाले, गाने वाले, कुम्भकार, तथा क्षेत्र कर्म करने वाले अर्थात् वाहक वा वर्त्तमान वाहती जाट इनमें थोड़ा सा भी गुण देख कर इनका अन्न खा लेना चाहिये। कहां तक लिखें इसी के प्रथम श्लोक तथा पराशर ११। २२ में तो यहां तक लिखा है कि (यश्चात्मानं निवेदयेत्) जो अपने आप को तुम्हारे अर्पण करता है अर्थात् जो यह कहे कि मैं तुम्हारा हूं उसका अन्न खा लेना चाहिये अर्थात् वह शुद्ध है।

मनु ने ४ । २०९ में लिखा है कि (गणान्नंगणिकान्नञ्च) समुदाय का अन्न नहीं खाना चाहिये परन्तु देखा जाता है कि आजकल वर्षा ऋतु में चन्दा से इकट्ठा किये धन से प्रचारित यज्ञों में सहस्रों ब्राह्मण न्योता जीमते हैं। मनु ने ४। २१२ में लिखा है कि (चिकित्सकस्य मृगयोश्च) वैद्य वा शिकारी का अन्न न खावे प्रत्युत आज ऐसा नहीं। मनु० ४। २१४ में लिखा है (पिशुना नृतिनोश्चान्नं) चुगलखोर और झूठी गवाही देने वाले का अन्न नहीं खाना चाहिये। मनु० ४। २०५ में उन्मत्त चोर आदि के अन्न का निषेध है परन्तु इस समय ऐसा नहीं है मनु० ४। २१५ में सुनार के अन्न का निषेध है परन्तु इस समय ऐसा नहीं :—

इत्यादि प्रमाणों तथा उदाहरणों से निःस्सन्देह मानना पड़ता है कि समय २ पर परिवर्त्तन होता रहा है।

❀ पुराणों में चांडाल की शुद्धि ❀

पौराणिक इतिहासों से प्रतीत होता है कि कभी कभी बिना प्रायश्चित्त विधि के ही चाण्डालादिकों को शुद्ध कर आचार्य तथा मठाधीश बनाया गया। जैसे कि नीचे के उदाहरणों से साचित होगा पीछे इस के कि, चांडाल की शुद्धि बतलाई जावे, प्रथम यह बतला देना चाहता हूं कि शास्त्र चांडाल किस को मानते हैं सम्पूर्ण धर्मशास्त्र (स्मृतियें) और तमाम पुराण इसके सहायक हैं कि :-

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चांडाल उच्यते।

सीसाभरणं तस्य कार्ष्णायस मथापिवा ॥८॥
वध्री कंठे समावध्य मल्लरीं कक्षतोऽपिवा ।९।
मलाप कर्षणं ग्रामे पूर्वाण्हे परिशुद्धिकम् ।
नपरान्हे प्रविष्टोऽपि वहिर्ग्रामाच्चनैऋते ॥१०॥

(औशनस)

ब्राह्मणी में जो शूद्र से उत्पन्न हो उसे चांडाल कहते हैं। इस के सीसे वा लोहे के भूषण होते हैं। यह कण्ठ में वध्री (चमड़े का पट्टा) और वगल में झाड़ू बांध कर मध्यान्ह से प्रथम ग्राम में शुद्धि के लिये मल को उठावे। और मध्यान्ह के उपरान्त ग्राम में प्रवेश न करे, ग्राम के वाहिर नैऋत कोण में वास करे।

ऊपर के लेख से प्रतीत होगया होगा कि चांडाल किस का नाम है। अव इन की शुद्धि देखिये भविष्य पुराण प्रतिसर्ग पर्व ३ खंड दो अध्याय ३४।

ऋषय ऊचुः—

वाग्जंकर्म स्मृतं सूत ! वेद पाठं सनातनम् ।
बहुत्वात्सर्व वेदानां श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥१
केन स्तोत्रेण वेदानां पाठस्य फलमाप्नुयात् ।
पापानि विलयं यान्ति तन्नोवद विलक्षण ! ।२।

ऋषि बोले कि सूत जी वेद पाठ सनातन वाचिकधर्म्म है परन्तु सारे वेदों का पढ़ना बहुत कठिन है, इसलिये हमें कोई ऐसा स्तोत्र बताओ जिस एक के पढ़ने से वेद पाठ का पुण्य प्राप्त और सम्पूर्ण पापों का नाश हो।

सूत उवाच :-

विक्रमादित्य राज्ये तु द्विजः काश्चिदभूद्भुवि।

व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ।३

सूत ने कहा, कि विक्रमादित्य के राज्य में व्याध कर्मा नाम से प्रसिद्ध द्विज हुआ, जो शूद्र वीर्य से ब्राह्मणी के उदर में से जन्मा था। अर्थात् चांडाल था। इस का विवर्ण करते हुए कहा :-

त्रिपाठिनो द्विजस्यैव भार्य्या नाम्नाहि कामिनी।

मैथुनेच्छावती नित्यं महाघूर्णितलोचना ॥४॥

द्विजः सप्तशती पाठे वृत्यर्थं कर्हिचिद्गतः।

ग्रामेदेवलके रम्ये बहुवैश्यनिषेविते ॥५॥

तत्र मासगतः कालो नाययौ च स्वमन्दिरे।

त्रिपाठी नाम ब्राह्मण की मदोद्धित कामिनी नाम स्त्री थी जो कि बहुत काम प्रिया थी। एकदा वह त्रिपाठी ब्राह्मण सप्तशती (चण्डी) पाठ के लिये देवल नाम एक वैश्य बस्ती में गया और एक मास पर्यंत वहां ही रहा।

तदा तु कामिनी दुष्टा रूपयौवन संयुता।
दृष्ट्वा निषादं सबलं काष्टभारोपजीवितम् ॥
तस्मै दत्वा पञ्चमुद्राः बुभुजे कामपीडिता ॥७॥

तब रूप यौवन संयुक्त उस दुष्टा कामिनी ने एक काष्ठ भार के उठाने वाले बलवान् निषाद को देखा और पांच रुपये देकर व्यभिचार किया।

तदा गर्भं दधौ सा च व्याध वीर्य्येण सेचितम्।
पुत्रोऽभूद्दश मासान्ते जातकर्म पिताऽकरोत् ॥

उस व्याध से कामिनी को गर्भ स्थिति हुई, दश मास पीछे पुत्र उत्पन्न हुआ, और पिता ने जातकर्म संस्कार किया।

द्वादशाब्दे गतेकाले सधूर्तो वेदवर्जितः।
व्याधकर्मकरो नित्यं व्याधकर्म्मा यतोऽभवत् ।९
निष्कासितौ द्विजेनैव मातृपुत्रौ द्विजाधमौ।
त्रिपाठी ब्रह्मचर्य्यं तु कृतवान् धर्म्म तत्परः ॥१०

बारह वर्ष की अवस्था में वह धूर्त वेद त्याग व्याध कर्म में आसक्त हो गया। इस से उस का नाम व्याधकर्म्मा हुआ। यह देख उस त्रिपाठी ब्राह्मण ने उन दोनों अर्थात् अपनी स्त्री और पुत्र को घर से निकाल दिया और स्वयं ब्रह्मचर्य धारण कर धर्म्म परायण हुआ।

निषादस्य गृहे चोभौ वने गत्वोषतुर्मुदा ।
प्रत्यहं जारभावेन बहुद्रव्यमुपार्जितम् ॥१३॥
व्याधकर्म्मा तु चौर्य्येण पितृमातृ प्रियंकरः ।

वे दोनों माता पुत्र हर्ष से उस निषाद के घर रहने लगे। वहां वह प्रतिदिन जार भाव से धन एकत्र करती, और व्याधकर्म्मा चोरी से।

कदाचित्प्राप्त वांस्तत्र द्विजवस्त्र समुद्गतम् ।
श्रुतमादि चरित्रं हि तेन शब्द प्रियेण वै ॥१५
पाठ पुण्य प्रभावेण धर्म्म बुद्धिस्ततोऽभवत् ।
दत्वा चौर्य्य धनं सर्वं तस्मै विप्राय पाठिने ॥
शिष्यत्व मगमत्तत्राऽक्षरमैशंजजाप ह ।
बीजमंत्र प्रभावेण तदंगात्पापमुल्बणम् ॥
निसृतं कृमिरूपेण बहुवर्णेनतापितम् ।

कदाचित् उसने उस ब्राह्मण के दल से निकलते हुए आदि चरित्र को एक ब्राह्मण से सुना और उस पाठ के प्रभाव से उस की बुद्धि में धर्म्म भाव उत्पन्न हुआ। वह अपने चोरी के सब धन को ब्राह्मण के अर्पण कर उस का शिष्य बना और अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म का जप करने लगा। उस बीज मंत्र के प्रभाव से उस का वह बड़ा पाप नष्ट हो गया।

त्रिवर्षान्ते च निष्पापो बभूव द्विजसत्तमः ।
पठित्वाक्षर मालाञ्च जजापादि चरित्रकम् ॥१८
द्वादशाब्दमितेकाले काश्यां गत्वातु सद्विजः ।
अन्नपूर्णां महादेवीं तुष्टाव परयामुदा ॥२०॥

तीन वर्ष के अनन्तर वह शुद्ध ब्राह्मण होगया, अनन्तर उसने काशी में जाकर वारह वर्ष अन्नपूर्णा की स्तुति की ।

साऽत्यष्टोत्तरे जप्ता ध्यानास्तिमितलोचना ।
सुष्वापतत्र मुदिता स्वप्ने प्रादुरभूच्छिवा ।
दत्वा तस्यै ऋग्विद्यां तत्रैवान्तरधीयत ॥२२
उत्थाय स द्विजा धीमान् लब्ध्वा विद्यामनुत्तमाम्
विक्रमादित्य भूपस्य यज्ञाचार्य्यो बभूव ह ॥२४

तब प्रसन्न हो देवी ने उस को ऋग्विद्या प्रदान की और वह ब्राह्मण उस उत्तम वेद विद्या को पाकर विक्रमादित्य के यज्ञ में आचार्य बना ।

एवं एक उदाहरण सनातनधर्म मार्तण्ड (जिस को शाहजहांपुर की धर्म सभा ने ज्येष्ठ शुक्ल संवत् १९३५ में प्रकाशित किया) से उद्धृत किया जाता है, जिस से पाठकों को प्रतीत होगा. कि उस समय भी लोगों ने कार्य वशात् विना प्रायश्चित्त के ही चण्डाल आदिकों को शुद्ध कर मठाधीश और आचार्य बनाया ।

करीबन सात सौ वर्ष हुए कि रामानुज संप्रदाय चली रामानुज संप्रदाय के प्रथमाचार्य षट्कोपतीर्थ वे जाति के कंजर थे यह उन्हीं के ग्रन्थों में से दिव्यसूरि प्रभादीपिका के चतुर्थ सर्ग में लिखा है :—

विक्रीयसूर्प विचचार योगी ।

योगी षट्कोपजी सूप बेचकर विचरते हुए । इस वाक्य से उनकी जाति का निश्चय होता है, और उनका टोप आज तक उनका सम्प्रदाय वाले पूजते हैं ।

दूसरे आचार्य मुनिवाहन हुए यह आचार्य जाति के चण्डाल थे । इनकी भी कथा उनके ग्रन्थों में लिखी है ।

दक्षिण में "तोतादरी" और "रङ्ग" जी दो स्थान हैं वहां एक चण्डाल चुरा कर मन्दिर के सहन में बुहारी (झाड़ू) देजाता था । एक दिन पुजारी लोगों ने जाना तो उस का बहुत मारा और बाहर निकाल दिया । पुनः एक पुजारी ने कहा कि मुझे एक स्वप्न भया है, कि उसी चण्डाल को अपना अधिष्ठाता बनाओ । सब लोगों ने उस का नाम मुनिवाहन रक्खा । उसका चेला एक मुसलमान भया उसका नाम तिरुयामुनाचार्य रक्खा । उन के चेले महा पूर्ण और तिनके चेले रामानुज भये ।"

देखो सनातन धर्म मार्तण्ड पृ० १८७ ।

सच तो है । जाति गंगा गरीयसी ।

अत्रि भी कहते हैं :—

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ।
पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥
(अत्रि० २७८)

यदि जाति स्वीकार करे और ब्राह्मणों की अनुग्रह हो तो नीच से नीच भी पवित्र हो जाते हैं ।

इसी आशय को लेकर मैं वर्त्तमान हिन्दू जाति से सविनय निवेदन करूंगा कि वह अपनी सामाजिक उन्नति वा जाति कल्याण के लिये जाति के प्रत्येक भाग को धर्मानुसार ऊंचा करने का प्रयत्न करें । क्योंकि किसी जाति का सामाजिक बल अथवा धार्मिक बल नहीं बढ़ सकता, जब तक कि उस का प्रत्येक भाग संघरूप से एक दूसरे का सहायक व सेवक नहीं बनता । न केवल इस उदाहरण से प्रत्युत स्मृतियों में चांडालों की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्तों का भी उपदेश पाया जाता है ।

अत्रि ऋषि श्लोक १२८ में लिखता है कि :—

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत्
एष व्यासः कृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत्

कपिला गौ की धारा का गरम दूध पीवे । इस का नाम व्यास ने कृच्छ्र कहा है और यह चांडाल को भी शुद्ध करता है । यही श्लोक रणवीर कारित प्रा० प्र० १५ पर इसी अर्थ में आया है दूध कितना पीना चाहिये कितने दिन पीना चाहिये इस की विशेष व्याख्या भी मिल सकती है ।

एवं पराशर अध्याय ११ में लिखा है कि:—

ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥

अहोरात्र का ब्रह्म कूर्च नाम व्रत श्वपाक चांडाल को भी शुद्ध कर देता है ।

❁ खान पान और विवाह ❁

संसार की गति भी एक विचित्र गति है । आर्य्य जाति जो कभी विद्या की खान थी जिस के निष्कलङ्क चरित्र और उच्च शिक्षा के सामने दूसरी जातियें मस्तिष्क नवाती थीं। जिस का धर्म पवित्र और सच्चा धर्म माना जाता था उसने समय के परिवर्तन और अपने आलस के कारण उस निर्मल धर्म को अपनी भ्रम जनक कल्पित कल्पनाओं से इतना कलङ्कित कर दिया कि वह न केवल दूसरों को ही भ्रम जाल भासने लगा, प्रत्युत स्वयं आर्य्य (हिन्दू) जाति भी उसे कच्चा धागा समझने लगी । जिस का तोड़ना वायु के अति निस्सार झोंकों ने सुकर समझा । चाहे वह पूर्व से आये हों या पश्चिम से । तिस पर भी आश्चर्य्य यह कि संसार में तो कच्चा धागा तनक जिह्वा के रस और हाथों की मरोड़ से गांठा जाता है, ...न्तु इसकी त्रुटि की पूर्ति सहस्रों वर्षों से असम्भव मानी गई।

एक आर्य्य (हिन्दू) न केवल म्लेच्छ के छूए जल पान से न केवल (घ्राणअर्ध खादनम्) के निर्मूल सिद्धान्तानुसार दूसरों के अन्न सूंघने से ही पतित होने लगा प्रत्युत अपनी जाति माता तथा भ्राता के हाथसे भी भोजन कर अपने आप को पतित समझने लगा ॥

परमात्मा वेद द्वारा आज्ञा देते हैं,

समानी प्रपा सहवोऽन्न भागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। ६–अथर्व–कां० ३ सू० ३०

हे एकता चाहने वाले मनुष्यो! तुम्हारी प्रपा अर्थात् पानी पीने का स्थान एक हो। तुम्हारा भोजन आदि साथ हो,

इस पर भाष्य करते हुए सायणाचार्य्य लिखते हैं—

(सहवोऽन्नभागाः) अन्नभागश्च सह एव भवतु परस्परानुरागवशेन एकत्रावस्थितमन्न-पानादिकं युष्माभिरुपभुज्यतामित्यर्थः॥

तुम्हारा अन्न भाग साथ ही हो। अर्थात् परस्पर की एकता वा स्नेह बढ़ाने के कारण एक साथ बैठ कर खान पान करो।

शोक जिस जाति का इतना उच्च सिद्धान्त हो, उस के पुत्र आज मनमाने खान पान के बन्धन में फंस कर न केवल चतुर्वर्णियों से प्रत्युत माता पिता से भी पृथक् चौका लगा इस वैदिक सिद्धान्त पर चौका फेर रहे हैं।

परन्तु वे लोग जिनका धर्म्म उनकी कपोल कल्पित सखरी निखरी वा लून मरच पर ही आ ठहरा है, उन को स्मृति रहे कि प्राचीन समय में ऐसा नहीं था।

इतिहास बतलाते हैं, कि पूर्व समय में राजसूय आदि यज्ञों में चारों वर्ण एकत्रित होते थे, सब एक पंक्ति में बैठ

कर भोजन करते थे, वहां कोई गौड़ ब्राह्मण बावर्ची नहीं होता था। प्रत्युत सूद सूपकार आदि दास लोग भोजन बनाते थे। जैसे—

आरालिकाः सूपकाराः रागखाण्डविकास्तथा
उपातिष्ठन्तु राजानं धृतराष्ट्रं यथा पुरा—

भा० आ० अ०

कि अरालिक सूपकार आदि रसोई किया करते थे। एवं श्रीरामचन्द्रजी अपने यज्ञ के लिये आज्ञा देते हैं।

अन्तरायणवीथ्यश्च सर्वे च नटनर्तकाः।
सूदानार्य्याश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः॥

वा० रा० उ० स० ६१

सब बाजार और व्यापारी नट (नर्तक) रसोइये और रसोई बनाने वाली स्त्रियें भरत जी के संग जावें। और ये सब लोग दास और शूद्र थे। जैसा कि भा० अश्वमेध पर्व अ० ८५ में—

विविधान्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि सूद आदि संकर जाति होकर भी ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के यहां ही भोजन बनाते थे और द्विजाति खाते थे। और क्यों न खाते, जब ऋषियों की आज्ञा है। कि—

आर्य्याधिष्ठिता वा शूद्रा संस्कर्तारः स्युः। ४

आप० ध० २-२-३

कि आर्यों की अध्यक्षता में सूद्र रसोई बनावें। क्या महाराज युधिष्ठिर वा श्रीरामचन्द्रादि आर्य नहीं थे। यदि आर्य थे तो क्या ऋषियों की यह आज्ञा नहीं कि:—

यन्त्वार्य्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति सधर्म्मो यद्-गर्हन्ते सोऽधर्मः ।७ आप० १—७—२०

जिसको आर्य अच्छा कहते हैं वह धर्म है, और जिस की निन्दा करते हैं वह अधर्म्म है।

यदि ऐसा है तो क्या कोई बतला सकता है? कि श्रीरामचन्द्र जी, धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर, अथवा उस समय के ऋत्विज लोग आजकल के "नौ कन्नौजी और दस चूल्हा" के अनुसार आप पकाकर खाते थे? नहीं, प्रत्युत वह एक पंक्ति में बैठ कर सूद्रों का पकाया खाते थे।

देखिये—

ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसाः भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥१२
वृद्धाश्चव्याधिताश्चैव स्त्री बालास्तथैव च।
नाना देशादनुप्राप्ताः पुरुषास्त्री गणास्तथा।
अन्नपानैः सुविहितास्तस्मिन् यज्ञे महात्मनः।१६।
अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः।
अहो! "तृप्तास्म भद्रन्ते" इति शुश्राव राघवः १७

स्वलङ्कृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्य्यवेषयन् ।१८।
वा० रा० म०

महाराज दशरथ के यज्ञ में ब्राह्मण शूद्र तपस्वी और संन्यासी वृद्ध रोगी स्त्री और बाल सब इच्छा पूर्वक भोजन पाने लगे अनेक देशों के स्त्री पुरुष इस महात्मा राजा के यज्ञ में आकर खान पान करने लगे। भोजन के समय ब्राह्मण लोग सुंदर स्वादु भोजनों की प्रशंसा करते थे। और "हम तृप्त हुए हैं आप का कल्याण हो" इस प्रकार राजा का यश गाते थे। और बहुत से सुवेश धारी रसोइये ब्राह्मणों के आगे अन्न परोसते थे ॥

यदि इसमें संदेह हो कि वहां शायद पूरी वा परोठा आदि पक्क न होगा, तो इस संदेह की निवृत्ति के लिये देखें बाल्मीकीय रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ९१ जहां श्री रामचन्द्र जी ब्राह्मणों और ऋषियों को निमंत्रण देते हैं, वहां साथ ही लक्ष्मण जी को आज्ञा देते हैं कि—

शतंवाह सहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम् ।
अयुतं तिल मुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल ! ॥१९॥
चणकानां कुलत्थानां माषाणां लवणस्य च ।
अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्ध संक्षिप्तमेव च ॥ २० ॥

हे महाबली लक्ष्मण ! बड़े हृष्ट पुष्ट एक लाख बैलों की गाड़ी में चावल भर कर वहां भेज दीजिये ॥

दस हज़ार गाड़ी तिल और मूंग की भर कर अभी वहां भेजवा दीजिये ॥

और इस के अनुसार चणा, कुलत्थ माष और लून, तदनुसार घी तथा और सुगन्धित द्रव्य वहां भेजवा दीजिये ॥

यहां न केवल माष आदि दालें भेजी गयीं प्रत्युत लून भी भेजा गया जिसको आज धर्म नाशक समझा जाता है ॥

एवं भारत सभापर्व अध्याय ४ में महाराज युधिष्ठिर ने

चोष्यैश्च विविधै राजन् पेयैश्च बहुविस्तरैः॥४॥

लेह्य पेय आदि अनेक प्रकार के भोजनों से ब्राह्मणों को तृप्त किया ॥

इतिहासों के देखने से यह भी प्रतीत होता है कि श्री रामचन्द्रादि अनेक धर्मिष्ठों ने उनके हाथ से भी छूत नहीं मानी, जिन हिन्दू जातियों को इस समय नीच माना जाता है ॥

जब श्री रामचन्द्रजी शबरी (भीलनी के) आश्रम में गये ।

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ।

पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥६॥

पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद् यथाविधि ॥७॥

वा० रा० सु०

तो उन दोनों भाइयों को देख कर वह हाथ जोड़ कर उठी पाओं छूए और यथा विधि पाद्य आचमन दिया । एवं भारत-वन पर्व अध्याय २०७ में लिखा है कि—

प्रविस्य च गृहं रम्यमासनेनाभि पूजितः,

पाद्यमाचनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ।

एक वेदवेत्ता कौशिक ब्राह्मण मिथिला देश में एक व्याध (कसाई) के गृह में जाता है और उससे जल लेकर आचमन करता है ॥

मेरे इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं होना चाहिये अथवा कोई अभोज्यान्न नहीं है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रों में चतुर्वर्णियों में से किसी वर्ण विशेष को इस लिये अभोज्यान्न नहीं लिखा कि वह अमुक वर्ण में उत्पन्न हुआ है। प्रत्युत शास्त्र वतलाते हैं कि जिसका आचार भ्रष्ट हो, जो क्रियाहीन हो जो भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करता हो उसका अन्न नहीं खाना चाहिये, चाहे वह ब्राह्मण गृह में ही उत्पन्न हुआ हो जैसे—

नाश्रोत्रियतते यज्ञे मनुः—४—२०५

अश्रोत्रिय से कराये यज्ञ में अन्न नहीं खाना चाहिये।

दत्तान्नमग्नि हीनस्य न गृह्णीयात्कदाचन

याज्ञवल्क्य०

अग्निहीन का अन्न नहीं खाना चाहिये। इत्यादि यदि वर्ण दृष्टि से भोज्याभोज्य का व्यवस्था होती तो राजा के अन्न का निषेध न होता। मनु वतलाता है कि—

राजान्नं तेज आदत्ते मनुः ४—२१८

राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये, क्योंकि राजा का अन्न तेज को हर लेता है ॥

परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये। क्योंकि प्राचीन समय में ऋषि महर्षि

तथा ब्राह्मण राजाओं का अन्न खाते थे और इस समय ब्राह्मण राजाओं का अन्न खाते हैं तो "राजान्नं तेज आदत्ते" का क्या मतलब।

उपनिषद् में एक इतिहास आता है कि जब ऋषियों ने राजा अश्वपति का धन नहीं लिया तो राजा ने कहा कि-

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नाना हिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

छां० ५। ११

आप मेरी भेंट क्यों नहीं स्वीकार करते मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कदर्य (कृपण) नहीं, कोई मद्यप (शराबी) नहीं कोई अग्नि शून्य नहीं (अर्थात् ऐसा कोई नहीं जो नित्य-प्रति अग्नि होत्र न करता हो) कोई अनपढ़ (मूर्ख) नहीं, कोई व्यभिचारी नहीं तो फिर व्यभिचारिणी कहां।

इत्यादि वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि शास्त्र चोर अव्रती मद्यपायी आदि भ्रष्टाचारी का अन्न अभोज्यान्न बताते हैं, और जिस राजा का आचार भ्रष्ट हो जिसका अन्न अन्याय से आया हो ऐसे राजा का अन्न नहीं खाना चाहिये॥

क्योंकि उस मलिन अन्न से एक व्रती ब्राह्मण का मन मलीन होता है और तेज नष्ट हो जाता है।

जैसा कि याज्ञवल्क्य श्लोक १४० स्नातक प्र० में लिखा है—

नराज्ञः प्रति गृह्णीया ल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः॥

कृपण और शास्त्राज्ञा के प्रतिकूल चलने वाले राजा का अन्न न लेवे।

यही भाव शूद्र शब्द का है। जहाँ यह आता है कि शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिये। जैसा कि इसी 'राजान्नं तेज आदत्ते' के आगे शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चस। मनु० ४-२१८ में लिखा है। यहाँ यह मतलब नहीं है कि शूद्र वर्ण में उत्पन्न हुए का अन्न नहीं खाना चाहिये प्रत्युत यहाँ ऋषियों का तात्पर्य यह है कि:—

(शुचं द्रवतीति शूद्रः) जो पवित्रता से रहित हो उस का अन्न नहीं खाना चाहिये। और इस भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण में प्रत्येक विद्वान् ने यही अर्थ किया है। क्योंकि यदि शूद्र वर्ण से ही तात्पर्य होता तो (कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्य च) मनु० ४-२१५ लुहार सुनार निषाद आदि के नामों की क्या आवश्यकता थी, क्या ये एक शूद्र शब्द या अंत्यज शब्द में नहीं आ सकते थे, इससे सिद्ध होता है कि जहाँ पतित वा चांडालादि क्रिया भ्रष्ट और मलिन अन्न वालों का वर्णन किया वहाँ शूद्र शब्द से अपने कर्त्तव्य भ्रष्ट शौचाचार विहीन चतुर्वर्णियों का भाव है न कि शूद्र वर्ण का।

महर्षि आपस्तंब अपने धर्म सूत्र में भोज्याभोज्यान्न का वर्णन करते हुए प्रश्नोत्तर रूप से लिखते हैं कि:—

प्र०-क आश्यान्नः-१।६।१९ किसका अन्न खाना चाहिये

उ०-ईप्सेदिति कण्वः-३।१।६-१९ कण्व ऋषि उत्तर देते हैं कि जो खिलाना चाहे!

इस में यह संदेह था कि तब तो चांडालादि सब का खा लेना चाहिये इस लिये कौत्स ऋषि कहते हैं कि:-

पुण्य इतिकौत्सः ४ । १-६-१९

जो पवित्र शुद्धाचारी हो उसका अन्न खाना चाहिये ।

वार्ष्यायणि ऋषि का मत है कि :—

यः कश्चिद् दद्यादिति वार्ष्यायणिः ।५।१-६-१९

चतुर्वर्णियों में से जो कोई दे देवे उसी का खा लेना चाहिये ॥

इस में आपस्तंब १-६-१८ में ऋषि अपना सिद्धान्त प्रकट करता है ।

सर्व वर्णानां स्वधर्मे वर्त्तमानानां भोक्तव्यम् ।१३

अपने २ धर्म में वर्त्तमान सब वर्णों का अन्न खाना योग्य है यह लिख कर आगे कहता है कि (शूद्र वर्ज्ज मित्येके) कोई २ यह भी कहते हैं कि शूद्र का नहीं खाना चाहिये परंतु इस में अपना सिद्धान्त प्रकट करते हुए आगे सूत्र १४ में लिखा—

(तस्यापि धर्मोपनतस्य) अपने धर्म में स्थित शूद्र का भी खा लेना चाहिये ।

यही सिद्धान्त मनु के इस श्लोक से भी पाया जाता है ।

नाद्याच्छूद्रस्य पकान्नं विद्वान श्राद्धिनोद्विजः ।

मनु० ४ । २२३

विद्वान ब्राह्मण श्राद्ध से शून्य शूद्र का अन्न न खावे । किसी २ टीकाकार ने (अश्राद्धिनः) के स्थान में (अश्रद्धिनः) पाठ रक्खा है कि श्रद्धाहीन का अन्न नहीं खाना चाहिये ॥

और आपस्तंब आदि के (धर्मोपनतस्य) आदि वचनों से यही शुक भी प्रतीत होता है । अस्तु इस से झगड़ा नहीं क्योंकि श्राद्ध भी श्रद्धा से ही किया जाता है । इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि अपने २ धर्म में तत्पर चारों वर्णों का अन्न भोज्यान्न है।

यदि उत्पत्ति क्रम से ही शूद्र अभोज्यान्न होता तो "दास नापित गोपाल कुल मित्रार्द्ध सीरिणः" पराशर ११-२२ दास (कैवर्त्त) नाई, गोपाल आदि को भोज्यान्न न लिखते क्योंकि-

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड एव च ।
कैवर्त्तमेद भिल्लाश्च सप्तैतेंऽत्यजाः स्मृताः ॥

अत्रि० २६५

सब ने दास (कैवर्त्त) को अंत्यज लिखा है। एवं व्यास स्मृति १-१० में (वर्द्धको नापितो गोपः) ब्याज लेने वाले, नाई, तथा गोप को अंत्यज लिखा परन्तु आगे इन्हीं को व्यास स्मृति ३ । ५१ में भोज्यान्न लिखा है और विरुद्ध इस के ऐसे भी अनेक प्रमाण पाये जाते हैं जिन में क्रिया भ्रष्ट ब्राह्मण कुमारों को भी अभोज्यान्न में लिखा है जैसे :—

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्य्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥

पराशर १२ । ५७

दुराचारी और निषिद्ध आचरण वाले ब्राह्मणोत्पन्न का अन्न खा कर द्विज एक दिन उपवास करें।

यो गृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि सः स्मृतः॥

जो विवाह की अग्नि लेकर पुनः उस की रक्षा नहीं करता अर्थात् अग्निहोत्र नहीं करता। उसका अन्न नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह वृथापाकी है।

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्व धर्म विवर्जितः।
निर्दयः सर्व भूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते॥

अत्रि० ३८१

जो ब्राह्मण के गृह में उत्पन्न होकर क्रियाहीन हो, मूर्ख हो, अध्ययनाध्यापनादि धर्म से रहित हो, निर्दयी हो वह चाण्डाल है। अतएव आपस्तंब ने सिद्धान्त किया कि अपने २ धर्म में स्थित चारों वर्णों का अन्न खाना चाहिये।

अब प्रश्न यह होता है कि यदि वे (समानो प्रपाःसहवोऽन्नभागः) इस वेदाज्ञा के अनुसार चतुर्वर्णी सहभोजी हैं, तो पुनः भ्रष्टाचारी का क्या और पतित का क्या? क्यों न इस खान पान की कैद को ही उठा दिया जावे इस के उत्तर में निवेदन है कि आर्य्यजाति के संमुख सदा से एक लक्ष्य रहा है जिस को उसने अपने जीवन का मुख्योद्देश्य माना है, और जिस की पूर्त्ति के लिये ही संपूर्ण नियमोपनियमों का अनुष्ठान है, उसका नाम आत्मज्ञान वा ब्रह्म प्राप्ति है।

वेद कहता है कि वह (शुद्धमपापविद्धम्) यजु० अध्या० ४० शुद्ध पवित्र और निष्पाप है, अतः उसकी प्राप्ति के लिये शुद्धि की आवश्यकता है, वृद्ध गौतम कहता है कि—

त्रिदण्ड धारणं मौनं जटा धारण मुंडनम् ।
वल्कला जिनसर्वाशो व्रतचर्य्याभिषेचनम् ॥
अग्निहोत्र वनेवासः स्वाध्यायोध्यान संस्क्रिया ।
सर्वाण्येतानि वै मिथ्या यदि भावो न निर्मलः ॥

त्रिदंड धारण करना, मौनसाधन अथवा मुंडन आदि सब वृथा हैं, अर्थात् केवल इन से आत्मिक ज्ञान नहीं होता जब तक कि भाव शुद्ध न हो। और भाव (चित्त) की शुद्धि बिना आहार शुद्धि के असंभव है जिस का अन्न अपवित्र है उसका भाव निर्मल नहीं हो सकता।

ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः

आहार की शुद्धि से चित्त की शुद्धि होती है, और चित्त शुद्धि से सत्यज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः ऋषियों ने वेदानुसार शौच को धर्म का एकांग मान कर शौचाचार का उपदेश किया।

ऋषियों का सिद्धान्त है कि—

शौचाचार विहीनस्य समस्ताः निष्फलाःक्रियाः

दक्ष० अ० ५

शौचाचार से जो हीन है उसके सब कर्म निष्फल हैं। वह शौच क्या है इसका उत्तर देते हुए अत्रि ऋषि लिखता है कि—

अभक्ष्य परिहारश्च संसर्गश्चाप्य निन्दितैः ।

आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्यभिधीयते ॥

अत्रि० ३५

अभक्ष्य का त्याग, निन्दित (पतितों) का त्याग और अपने आचार में स्थिति को शौच कहा है।

और यह शौच धर्म चतुर्वर्णियों का साधारण धर्म है मनु ने जहां चतुर्वर्णियों के (अध्ययनाध्यापन) आदि भिन्न २ धर्मों को वतलाया, वहां साधारण धर्मों का वर्णन करते हुए लिखा कि—

अहिंसा सत्य मस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्ये ऽब्रवीन्मनुः ॥

मनु० १०-६३

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) शौच और इन्द्रिय दमन यह चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं।

यदि मनु के कथनानुसार यह सत्य है कि शूद्र का भी शौच धर्म है जैसा ब्राह्मण का और यदि यह सत्य है कि जो अभक्ष्य भक्षण से रहित और अपने आचार में स्थित है वह शुद्ध पवित्र है, तो अवश्य मानना पड़ता है कि जहां शूद्र के अन्न का निषेध है वहां (शुचं द्रवतीति शूद्रः) पूर्वोक्त शौच को त्यागने वाले का नाम शूद्र है चाहे किसी वर्ण में उत्पन्न हुआ हो, और आपस्तंव का यह कथन सत्य है कि (सर्व वर्णानां स्वधर्मेवर्त्त मानानां भोक्तव्यम्) अपने धर्म में स्थित चारों वर्णों का अन्न खाने योग्य है, और पतित भ्रष्टाचारी का अन्न नहीं खाना चाहिये, इति।

वेद ने जहां "समानीप्रपाः" का उपदेश किया साथही यह भी आज्ञा दी।

सप्तमर्य्यादाः कवयस्ततक्षु स्तासामेकामिदभ्यंहुरोगात्। ऋ० अष्टक ७ अ० ५ व० २२॥

सात मर्यादाएं (अर्थात् काम क्रोधादि से उत्पन्न भ्रष्ट रास्ते) नियत की गई हैं। जो मनुष्य उन में से किसी एक को भी ग्रहण करता है वह पापी (पतित) हो जाता है॥

वह सात मर्यादाएं कौन हैं इनका सायणाचार्य निरुक्त ६—२७ से उद्धृत करता है।

स्तेयं गुरुतल्पारोहणं ब्रह्महत्या सुरापानं दुष्कृत कर्म्मणः पुनः पुनः सेवनं पातकेऽनृतोद्यमिति॥

चोरी, गुरु स्त्री गमन, ब्रह्महत्या, मद्यपान, दुष्कर्मों का बार २ सेवन और पातक में झूठ॥

इन्हीं की शास्त्रों में विशेष व्याख्या है इनका अन्न तथा संसर्ग त्याज्य है जब तक कि युक्त प्रायश्चित्त न करें॥

यथा—न भक्षयेत् क्रियादुष्टं यद् दुष्टं पतितैः पृथक्।

क्रिया दुष्ट और पतितों से दुष्ट अन्न को न खाना चाहिये॥

२ अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥

अमेध्य अपवित्र स्थान में उत्पन्न को न खाना चाहिये जैसे ।

मृद्वारि कुसमादींश्च फलकंदेक्षुमूलकान् विण्-
मूत्र दूषितान् प्राश्य चरेत् कृच्छ्रं च पादतः ॥

लघु विष्णुः ।

फल गन्ना मूली आदि यदि विष्टा मूत्र से दूषित हो अर्थात् अपवित्र स्थान में उत्पन्न हो तो उनको खाकर कृच्छ्र व्रत का एक पाद करे ।

म्लेच्छान्नं म्लेच्छसंस्पर्शः म्लेच्छेन सह संस्थितिः

देवलः ।

म्लेच्छों का अन्न खाकर म्लेच्छों से स्पर्श कर तथा स्थिति करके तीन रात्रि उपवास करना चाहिये ॥

एवं । संसर्ग दुष्टं यच्चान्नं क्रियादुष्टं च कामतः ।
भुक्त्वा स्वभाव दुष्टं च तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

व्यास ।

संसर्ग दुष्ट, क्रिया दुष्ट और स्वभाव दुष्ट अन्न को खाकर तप्त कृच्छ्र व्रत करे ॥

स्वभावदुष्ट ॥ मांस मूत्र पुरीषाणि प्राश्य गो-
मांसमेव च । श्व गो मायुकपीनां च कृच्छ्रं विधी-
यते ॥ पाठीनासिः

मांस मूत्र पुरीष (विष्टा) तथा गो कुत्ता, गीदड़, कपि का मांस खाकर तप्त कृच्छ्र व्रत करे।

संसर्गदुष्ट॥ केशकीटावपन्नं तु नीलीलाक्षो-पघातितम्। स्नाय्वस्थि चर्म संस्पृष्टं भुक्त्वान्नं-तूपवसेदहः॥ वृहद्यमः

केश (बाल) कीर, नील, लाक्षा से युक्त तथा हड्डी चर्म आदि से छूत अन्न को खाकर उपवास करना चाहिये।

जाति दुष्ट—अविखरोष्ट्र मानुपीक्षीर प्राशने तप्तकृच्छ्रः।

भेड़, गधी, ऊंटनी और मानुषी का दूध पीकर तप्त कृच्छ्र करे।

एवं रस दुष्ट गुण दुष्ट और काल दुष्ट अन्न का निषेध है जिस से शारीरिक और आत्मिक उन्नति में बाधा पड़ती हो।

* विवाह *

इसमें सन्देह नहीं कि तुल्य वर्ण का विवाह अर्थात् ब्राह्मण गुण युक्त ब्राह्मण कुमार का तदनुकूल ब्राह्मण कुमारी से विवाह उत्तम और श्रेयस्कर है और इसकी सबने प्रशंसा की है, क्योंकि उत्तम वीर्य और उत्तम क्षेत्र के संयोग से उत्तम संतान की विशेष संभावना है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि अपने से नीचे वर्ण में विवाह करने वाला पतित होजाता है। क्योंकि ऋषियों ने वर्ण क्रम से चार, तीन, दो और एक वर्ण में विवाह की आज्ञा दी है:—

शूद्रैव भार्य्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृतः।
ते च स्वाश्चैव राज्ञश्चताश्चस्वाचाग्रजन्मनः ॥

मनुः ३—१३

ब्राह्मण की ब्राह्मणी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा स्त्री हो सकी है, अर्थात् ब्राह्मण चारों वर्णों में विवाह कर सकता है। क्षत्रिय तीन में वैश्य दो में शूद्र केवल एक शूद्र वर्ण में।

हां याज्ञवल्क्य आदि ने ब्राह्मण का शूद्रा से विवाह का निषेध किया, परन्तु प्राचीनकाल में अनेकों ने मनु की इस आज्ञा का अनुकरण किया और वे पतित नहीं हुए॥

मनु का सिद्धान्त है कि:—

यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येद् यथाविधि।
तादृग् गुणा साभवति समुद्रेणेवनिम्नगा॥

मनुः ९—२२

स्त्री जैसे भर्त्ता से विवाही जाती है, वैसी ही हो जाती है जैसे समुद्र में मिली हुई नदी। अर्थात् उसका वही वर्ण और गोत्र हो जाता है जो पति का:—

इसके आगे उदाहरण रूप से बताया है कि—

अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ता धमयोनिजा।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्॥

मनुः ९-२३

अधम योनि में उत्पन्न अक्षमाला वशिष्ठ के संग से तथा शारङ्गी मन्दपाल के सङ्ग विवाह करने से पूज्य बनीं। अतएव सम्पूर्ण ऋषियों ने (बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत्) आश्वला० गृ० सू० १-५-२।

नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्। मनुः

इस बात पर बल दिया कि गुण कर्मानुसार योग्य वर को कन्या देनी चाहिये।

इतिहासों के देखने से प्रतीत होता है कि भृगु आदिकों ने न केवल अनुलोमज विवाह किया प्रत्युत बहुत से द्विजातियों ने उन की कन्याओं से विवाह किया जिनको नीच वा अन्त्यज कहा जाता है।

महाराजा शन्तनु कैवर्त्य (अन्त्यज) की कन्या को देख कर कहता है:—

न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया।
त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि॥

दे० भा० स्कं० २ अ० ५

हे मृगनयनी! मेरे आगे कोई स्त्री नहीं है, तू मेरी धर्मपत्नी बन।

जब कैवर्त्त के आग्रह से भीष्म ने राज्य और विवाह दोनों के त्याग की प्रतिज्ञा की तो:—

एवं कृत प्रतिज्ञांतु निशम्य झषजीविकः।
ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्गशोभनाम्॥

इस कैवर्त्त ने अपनी सत्यवती कन्या शन्तनु को विवाह दी।

एवं पराशर तथा व्यास का शूद्र कन्या से पुत्र उत्पन्न करना अर्जुन का उलोपी से विवाह भीमसेन का हिडिम्बा से पुत्र उत्पन्न करना इसका साक्षी है कि निचले वर्ण से कन्या लेने में कोई पतित नहीं हुआ।

विशेष क्या कहें ऋषियों ने तो पतितों की कन्या भी ले लेने की आज्ञा दी है देखो याज्ञवल्क्य प्रा० प्र० श्लोक २६१ और इसकी मिताक्षरा टीका।

कन्यां समुद्वहे देषां सोपवासाम किञ्चनाम् ।२६१

पतितों की कन्या को विवाह ले, जो उन पतितों के धन से रहित हो और जिसने उपवास किया हो।

मिताक्षरा (पतितोत्पन्नापिसा न पतिता) पतित से उत्पन्न हो कर भी कन्या पतित नहीं होती।

बसिष्ठ कहता है—

पतितोत्पन्नः पतित इत्याहुरन्यत्र स्त्रियः।
सा हि परगामिनी तामरिक्था मुपादेयादिति ॥

पतित की संतान पतित होती है बिना कन्या के, अर्थात् कन्या पतित नहीं होती, क्योंकि कन्या दूसरे घर जाने वाली होती है, वह त्यागने योग्य नहीं।

इस लिये उन पतितों के धन से रहित उस को विवाह लेना चाहिये।

हारीत—पतिस्य कुमारीं विवस्त्रामहोरात्र मुपोषितां प्रातःशुक्लेन वाससाच्छादितां "नाह

मेतेषां नममैत " इति त्रिरुच्चैरभिदधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्वहेत् ।

पतित की कन्या जो वस्त्र से रहित हो जिसने एक रात दिन का उपवास कर लिया हो प्रातःकाल नवीन वस्त्र से आच्छादित हो और जो तीनवार उच्च स्वर से कहदे कि " न मैं इनकी और न यह मेरे " अर्थात् उन पतितों का संसर्ग छोड़ दे उस को विवाह लेना चाहिये । मिताक्षराकार यह व्यवस्था देता हुआ लिखता है :—

एवं च साति पतित योनि संसर्ग प्रतिषेधो भवति ।

ऐसा करने से पतित योनि संसर्ग दोष दूर हो जाता है अतएव मनु की आज्ञा है कि :—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विवधानि च रत्नानि समादेयानि सर्वतः ॥

मनु० २-२४०

स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म्म, शौच, और सुभाषित जहां से मिले ले लेना चाहिये ।

* पतित और प्रायश्चित्त *

१—अकुर्वन् विहितं कर्म निन्दितञ्च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु, प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

मनु० ११-४४

विहित कर्मों के न करने से निन्दित कर्मों के सेवन तथा इन्द्रियासक्ति से मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है।

जैसे निर्मल दर्पण कालिमा आदि के संसर्ग से मलिन हो कर प्रतिबिम्ब दर्शन के योग्य नहीं रहता, जब तक कि युक्त साधनों द्वारा उसका मार्ज्जन न किया जावे।

एवं मनुष्य का अन्तःकरणावच्छिन्न जीवात्मा मोहावरण से आच्छादित हो कर अभक्ष्य भक्षणादि पापाचार से मलिन वा अपवित्र हो जाता है, जब तक कि उसको युक्त रीति से शुद्ध न किया जावे॥ अतएव ऋषियों ने आज्ञा दी कि-

एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥

पा० प्रा० प्र० ३-२२०

इस (प्रायश्चित्त) से प्रायश्चित्ती का अन्तरात्मा और लोग प्रसन्न हो जाते हैं, क्योंकि प्रायश्चित्त का अर्थ ही पापों से छूटना और निर्मलता को स्वीकार करना है। जैसे-

प्रायः पापं विजानीयाच्चित्तं वै तद्विशोधनम्।

प्रायः, नाम पाप का है और चित्त उसकी शुद्धि है, तथा-

प्रायो नाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते।
तपो निश्चय संयुक्तं प्रायश्चित्तं तदुज्यते ॥

प्रायः नाम तप का है और चित्त नाम निश्चय का है, तप और निश्चय को प्रायश्चित्त कहते हैं। अर्थात् वह साधन जो शास्त्रों तथा देशकालानुसार विद्वान् पुरुषों ने नियत किये हों, जिन के अनुष्ठान से पातकी के आत्मा तथा जाति की

प्रसन्नता हो, उस का नाम प्रायश्चित्त है ॥ अत्रि ऋषि इस प्रकार से इसका नाम शौच रखते हैं जैसे—

अभक्ष्य परिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ।
आचारेषु व्यवस्थानं शौच मित्यभिधीयते ॥
अत्रि० श्लो० ३५

अभक्ष्य का परित्याग नीच संसर्ग से वियुक्ति और अपने वर्णाश्रमानुकूल सदाचार में स्थिति का नाम शौच वा शुद्धि है॥

मैं इस प्रायश्चित्त निर्णय से प्रथम यह प्रकट कर देना चाहता हूं कि इस विषय में संप्रति प्राचीन आर्यजाति से हम बहुत दूर चले गये हैं । प्राचीन समय में क्या शास्त्र दृष्टि से और क्या कर्मानुष्ठान से जिस को जातिच्युत (पतित) समझा जाता था इस समय के अनुष्ठान में ऐसा नहीं दीख पड़ता चाहे शास्त्र दृष्टि में वह अब भी ऐसे ही पाप हैं जैसे कि इस से प्रथम थे । मनु बतलाता है कि—

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्राति रघ्रेयमद्ययोः ।
जैह्मयं च मैथुनं पुंसि जाति भ्रंशकरं स्मृतम् ॥
मनु० ११ । ६७

ब्राह्मण को लाठी आदि से दुःख देने वाला, मद्य और दुर्गन्धि युक्त पदार्थों को सूंघने वाला, कुटिल, तथा पुरुष से मैथुन करने वाला, जातिच्युत (पतित) होता है ।

जाति भ्रंशकरं कर्म्म कृत्वाऽन्यतम मिच्छया ।
चरेत्सां तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यम निच्छया ॥
मनु० ११ । १२४

इन (पूर्वोक्त) में से कोई भी कर्म इच्छा के करने से प्राजापत्य व्रत करे, परंतु आज कल ऐसे कर्म करने वालों को जाति च्युत नहीं किया जाता ॥

शास्त्रों में लिखा है कि—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥
अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीक निर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥

इत्यादि मनुः–११ श्लो० ५४-५८

ब्रह्महत्या, सुरापान (शराब पीना) चोरी और गुरु की स्त्री से संग यह महा पाप हैं । और इन से संसर्ग करने वाला भी महा पातकी है तथा असत्य बोलना, चुगली खाना, वेद की निन्दा, झूठी साक्षी देना, धरोहर का हर लेना आदि को पूर्वोक्त महा पातकों के तुल्य लिख कर नाना प्रायश्चित्त लिखे जिनमें प्राणान्त तक भी दण्ड विधान है । जिन की ओर आज कल दृष्टि नहीं दी जाती । इसका यह मतलब नहीं कि अब वह पाप नहीं रहे । तात्पर्य यह है कि समय के प्रभाव से सुरापान वा असत्य भाषण आदि से किसी को जातिच्युत नहीं समझा जाता । और ब्रह्महत्या आदि में यदि दंड दिया जाता है तो वह राज्य की ओर से ही होता है ॥

अतः उन सब को विस्तार भय से छोड़ कर इस पुस्तक में केवल उन्हीं पातकों वा उपपातकों को दरशाया गया है जिनसे

इस समय मनुष्य पतित किया जाता है और जिनकी शुद्धि में विवाद होरहे हैं।

क्या प्राचीन समय में और क्या वर्त्तमान में आर्यजाति सदैव गोहत्या और गोमांस भक्षण को पाप मानती रही है और मानती है। और इस पाप में ग्रस्त को जातिच्युत समझा जाता है। इस लिये सब से प्रथम इसी का वर्णन किया जाता है।

मन्वादि सकल स्मृतिकारों ने गोवध को उपपातकों में स्थान दिया है, और उसके प्रायश्चित्त का भी देश काल पात्र शक्त्यनुसार न्यूनाधिकतया वर्णन किया है।

मनुने अध्याय ११ श्लो० १०८-११६ में लिखा है किः—

उपपातक संयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत्।
कृतवापो वसेद् गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ।१०८।

उपपातक युक्त गो घातक एक मास पर्यन्त यवों को पीवे, मुण्डन कराकर गौ का चर्म ओढ़ गोशाला में रहे।

जितेन्द्रिय होकर क्षार लवण रहित अन्न को चौथे प्रहर खावे और दो मास पर्यन्त गोमूत्र से स्नान करे॥

चलती के पीछे चले बैठने पर बैठ जाय इत्यादि सेवा बतला कर कि इस प्रकार जो गौ हत्यारा गौ की सेवा करता है यह तीन मास में उस पाप से छूट कर शुद्ध होजाता है।

व्रत के उपरान्त दस १० गौयें और एक बैल वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवे यदि इतनी शक्ति न रखता हो तो सर्वस्व दे देवे।

याज्ञवल्क्य ने लिखा है किः—

पंच गव्यं पिबेद् गोघ्नो मासमासीच संयतः।
गोष्टेशयो गोनुगामी गोप्रदानेन शुद्धयति ॥

(या० प्रा० प्र ३)

गौ हत्यारा मास पर्यन्त संयम से पञ्चगव्य पीने से, गोष्ठ में शयन करने से गौके पीछे चलने तथा गोदान से शुद्ध होजाता है।

समय के परिवर्त्तन से संवर्त्ताचार्य ने १५ दिन में इस की शुद्धि की व्यवस्था दी।

गोघ्नः कुर्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरुपसान्निधौ।
तत्रैवाक्षितिशायी स्यान्मासार्द्धं संयतेन्द्रियः१३३
स्नानं त्रिषवणं कुर्य्यान्नखलोमविवर्ज्जितः।
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधि सकृन्नरः १३४
एतानि क्रमशोऽश्नीयात् द्विजस्तत्पापमोक्षकः।
गायत्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः १३५
पूर्णे चैवार्द्धं मासे च सविप्रान् भोजयेद् द्विजः।
भुक्तवत्सु च विप्रेषु गांच्च दद्यात् विचक्षणः॥

(संवर्त० १३६)

गोघातक गोशाला में जाकर संस्कार करे, वहां ही पृथिवी पर १५ दिन शयन करे, तीन वक्त स्नान करे, नख तथा

लोम कटवावे, मांग कर यवों के सत्तु खाये, अथवा एक वक्त दूध या दही खाये, गोहत्या से मुक्त होने के लिये इन साधनों को करे।

गायत्री तथा अन्य पवित्र अघमर्षण आदि मंत्रों का जप करे जब १५ दिन पूर्ण होजावें, तो ब्रह्मभोज करे और गौदान देवे।

एवं संपूर्ण उपपातकों के भिन्न २ प्रायश्चित्त बतला कर अन्त में सर्व साधारण प्रायश्चित्त का उपदेश कियाः—

उपपातक शुद्धिः स्याच्चान्द्रायण व्रतेन च।
पयसा वापि मासेन पराकेणाथ वा पुनः॥

(या० प्रा० प्र० ६—२६५)

चान्द्रायण व्रत से, वा एक मास पर्यन्त दूध पान करने से, अथवा पराक व्रत करने से ही गोहत्या आदि सकल उपपातकों की शुद्धि होजाती है। इस में मिताक्षराकार व्यवस्था देता है कि याज्ञवल्क्य ने देश काल शक्ति की अपेक्षा से अज्ञान कृत गोहत्या में चार व्रत नियत किये हैं। १ चान्द्रायण २ मास पर्यन्त दुग्धपान, मास पर्यन्त पञ्चगव्य, वा पराकव्रत, शक्त्यानुसार इन में कोई एक करने से शुद्धि होजाती है। और ज्ञान से गोवध में मनु का सिद्धान्त है किः—

अवकीर्णि वर्ज्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायण मथापिवा।

(मनुः ११-११७)

विना अवकीर्णी के शेष सब उपपातकियों की चान्द्रायण से शुद्धि हो जाती है।

अभक्ष्यभक्षण तथा अगम्या गमन।

अभोज्यानांश्च भुक्त्वान्नं स्त्री शूद्रोच्छिष्ट मेव च।
जग्ध्वा मांस मभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान् पिबेत्॥

(मनुः ११-१५२)

अभोज्य अर्थात् पतित म्लेच्छ आदिकों का अन्न खाकर स्त्री और शूद्रका जूठा अन्न खाकर तथा अभक्ष्य मांस (गोमांसादि) खाकर सात रात्रि जौ के सत्तु वा (लप्सी) खाने से शुद्धि होजाती है। एवं अत्रिस्मृतिः पृ० ३ श्लो० ७२।

अमेध्य रेतो गोमांसं चांडालान्न मथापिवा।
यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥

(पराशर—११-१)

अपवित्र वीर्य—गोमांस तथा चांडाल का अन्न खाकर ब्राह्मण कृच्छ्र चान्द्रायण से शुद्ध होता है॥ (ऐसे स्थानों पर जहां केवल ब्राह्मण का ही नाम हो (क्षत्रिय विट् शूद्राणां तु पादपाद हानिः) का सिद्धान्त याद रक्खें अर्थात् नीचे २ वर्ण में एक २ पाद कम हो जाता है।

अगम्या गमनं कृत्वा मद्य गोमांस भक्षणम्।
शुद्ध्येच्चान्द्रायणाद्विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः॥
वैश्यः सांतपनाच्छूद्रः पंचाहो भिर्विशुद्ध्यति॥

गरुड़ पु० मू० अ० २१४—श्लो० ५६

न गमन करने योग्य स्त्री से गमन कर, मद्य और गौ मांस भक्षण करके ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करे, क्षत्रिय प्राजापत्य वैश्य सांतपन और शूद्र पांच दिन के व्रत से शुद्ध हो जाता है ॥

भुंक्ते ज्ञानाद् द्विजश्रेष्ठश्चाण्डालान्नं कथंचन ।
गोमूत्र यावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥

पराशर० ६-३२

ब्राह्मण यदि ज्ञान पूर्वक चाण्डाल का अन्न खाले, तो दस दिन यव खाने तथा गो मूत्र पीने से शुद्ध हो जाता है ॥

अन्त्यजोच्छिष्ट भुक् शुद्ध्येत् द्विजश्चान्द्रायणेन च । चाण्डालान्नं यदा भुंक्ते प्रमादादैन्दवं चरेत् ॥ क्षत्रजातिः सान्तपनं पक्षो रात्रं परे तथा ॥ गरुड़ पु० आ० २२७-१२

द्विज अन्त्यजों का जूठा खाकर चान्द्रायण व्रत से शुद्ध होता है यदि ब्राह्मण प्रमाद से चांडाल का अन्न खाले तो चान्द्रायण क्षत्रिय सांतपन वैश्य पाक्षिक और शूद्र एक रात्रि के व्रत से शुद्ध हो जाता है ॥

चाण्डालपुल्कसादीनां भुक्त्वा गत्वा च योषिताम्
कृच्छ्राष्टमाचरेत्कामाद् कामादैन्दवं चरेत् ॥

यमस्मृ० २८

इच्छा पूर्वक चांडाल आदिकों का अन्न खाकर और उनकी स्त्रियों से मैथुन कर आठ कृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होजाता है ॥

असंस्पृष्टेन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥

अत्रि० श्लो० ७३

न स्पर्श करने योग्य से स्पर्श कर केवल स्नान से शुद्ध होजाता है।

सर्वान्त्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ।
पराकेण विशुद्धिः स्याद् भगवान त्रिरब्रवीत् १७

भगवान् अत्रि कहते हैं कि सम्पूर्ण अंत्यज जातियों के अन्न खाने से उनमें गमन करने से पराक व्रत से शुद्धि होती है ॥

संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्न मन्त्यजैर्वाप्युदक्यया ।
अज्ञानाद् ब्राह्मणोऽश्नीयात् प्राजापत्यार्द्धमा चरेत्

अत्रि १७२

ब्राह्मण अन्त्यज तथा रजस्वला के स्पर्श किये पक्व अन्न को यदि अज्ञान से खाले तो आधा प्राजापत्य व्रत करे, और ज्ञान से खाले तो सारा ।

अन्त्यजानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः।
चान्द्रं कृच्छ्रं तदर्द्धं च ब्रह्म क्षत्र विशांविदः ॥

अंगिराः—२

अन्त्यजों के भी पकाए अन्न को खाकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य क्रम से चान्द्रायण, कृच्छ्र और आधा कृच्छ्र कर शुद्ध हो जाते हैं ॥

कापालिकान्न भोक्तृणां तन्नारी गामिनां तथा।
कृच्छ्राब्दमा चरेज् ज्ञानाद् ज्ञानादैन्दवं द्वयम् ॥

यम—२१

ज्ञान से कापालिकों का अन्न खाकर और उनकी स्त्रियों से गमन कर वर्ष पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करे और यदि अज्ञान से करे तो चान्द्रायण व्रत करे ॥

महापातकिनामन्नं योऽद्याद् ज्ञानतो द्विजः।
अज्ञानात्तप्तकृच्छ्रं तु ज्ञानाचान्द्रायणं चरेत् ॥

वृद्धपा० ६–१८६

जो द्विज महापातकियों के खाले तो अज्ञान से खाने में तप्त कृच्छ्र व्रत करे। और ज्ञान पूर्वक खाने में चान्द्रायण व्रत कर शुद्ध हो जाता है ॥

अभक्ष्य भक्षणे विप्रस्तथैवा पेयपान कृत्।
व्रतमन्यत् प्रकुर्वीत वदन्त्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥

वृ० पा० ६—२०६

कई विद्वान् ब्राह्मणों का कथन है कि ब्राह्मण अभक्ष्य भक्षण कर तथा अपेय पान कर कोई एक व्रत कर शुद्ध हो जाता है ॥

शैलूषीं रजकीं चैव वेणु चर्म्मोपजीवनीम्।

एताः गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चान्द्रायण व्रतम् ॥
संवर्त—१५४

द्विज मोह से नटी, रजकी, डूमणी, अथवा चमारी से संगम करके चान्द्रायण व्रत करे।

चांडालीं च श्वपाकीं वा अनुगच्छाति यो द्विजः ।
त्रिरात्र मुपवासीत विप्राणा मनुशासनात् ॥५
सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ।
ब्रह्म कूर्चं ततः कृत्वा कुर्य्याद् ब्राह्मण तर्पणम् ।६
गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद् गो मिथुनद्वयम् ।
विप्राय दक्षिणां दद्यात् शुद्धिमाप्नोत्य संशयम् ।७
(परा० १०)

जो द्विज चांडाली वा श्वपाकी का संग करे। वह ब्राह्मणों की आज्ञानुसार तीन दिन उपवास कर शिखा सहित मुंडन करा कर, अनन्तर ब्रह्म कूर्च करके ब्राह्मणों को प्रसन्न करे. नित्य गायत्री जप करे और दो गौ का दान करे तो शुद्ध हो जाता है।

म्लेच्छान्नं म्लेच्छ संस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः
वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ देवल०

जिसने एक वर्ष वा वर्ष से अधिक म्लेच्छों का अन्न

आया हो म्लेच्छ सहवास किया हो उसकी शुद्धि तीन दिन व्रत करने से होती है।

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पंच प्रभृति विंशतिम्।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम्॥

देवल०

जो पांच वर्ष से लेकर बीस वर्ष पर्यन्त म्लेच्छों के साथ रहा हो उसकी शुद्धि दो चान्द्रायण व्रत करने से होजाती है।

* चाण्डालादिकों के जलपान में शुद्धि *

चाण्डाल भाण्डे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः।
गोमूत्र यावकाहारो सप्त षद् त्रिः द्व्यहान्यपि॥

(अत्रि० १७१)

ब्राह्मण आदि यदि चाण्डाल के घड़े में से जल पीलें तो क्रम से सात छः तीन और दो दिन गोमूत्र तथा यव खाने से शुद्ध हो जाते हैं।

भाण्डे स्थितमभोज्यानां पयोदधि घृतं पिबेत्।
द्विजाते रूपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति॥

(वृ० या० ६-२०६)

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यदि अभोज्यों के भांडे में जल, दही और घी पीलें तो उपवास करके और शूद्र दान से शुद्ध हो जाते हैं।

मद्यादि दुष्ट भाण्डेषु यदायं पिबेतद्विजः ।
कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत् पुनः संस्कार कर्मणः ॥
(गरु० पु० २१५-१७)

जो द्विज मद्य आदि से दुष्ट भांडे में जल पान करे, तो कृच्छ्रपाद से शुद्ध हो जाता है ।

* कूपादि की शुद्धिः *

अस्थि चर्म मलं वापि मूषिके यदि कूपतः ।
उद्धृत्य चोदकं पंचगव्याच्छुद्ध्येच्छोद्धितम् । ४६
कूपेच पतितौ दृष्ट्वा श्व शृगालौच मर्कटम् ।
तत्कूपस्योदकं पीत्वा शुद्ध्येंद्विप्रास्त्रिभिर्दिनैः ।४७
(गरु० पु० २१४)

यदि जल भरने वाले कूप से अस्थि, चर्म, मल (विष्ठा) वा मृत मूष निकले तो कूप का जल निकालने और पंचगव्य से शुद्धि हो जाती है । कूप में कुत्ता, गीदड़ वा वानर को गिरा हुआ देख कर और पुनः उसका जल पीकर ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध होता है ।

* मलिन पदार्थों से शुद्धिः *

अज्ञानात् प्राश्य विन्मूत्रं सुरासंस्पृष्ट मेवच ।

पुनः संस्कार मर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजोतमः ॥

(मनु० ११-१५०)

तीनों वर्ण मल, मूत्र और सुरा से युक्त पदार्थ को खा कर पुनः संस्कार के योग्य हो जाते हैं । अर्थात् उनका पुनः यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिये, परन्तु इस में मुण्डन वा मेखला आदि नहीं है ।

* आपद्धर्म *

जीवितातयमापन्नो यो ऽन्नमत्ति यतस्ततः ।
आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥

(मनु० १०-१०४)

प्राणातप में जो द्विज जहां तहां खालेता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता जैसे पंक से आकाश । अर्थात् जहां मिले खा लेवे ।

आपद्गतो द्विजोऽश्नीयाद् गृह्णीयाद्वायतस्ततः
न स लिप्यते पापेन पद्मपत्र मिवाम्भसा ॥

(वृ० या० ६-३१८)

आपत्ति में द्विज इधर उधर खालेने से पाप में लिप्त नहीं होता, जैसे जल में कमल ।

आपद्गतः स प्रगृह्णन् भुंजानो वा यतस्ततः ।

न लिप्यतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमो हि सः ॥

(या० प्रा० प्र० ३ आ २ श्लो०)

आपत्ति में जहां तहां से लेकर खाता हुआ ब्राह्मण पापी नहीं होता, वह प्रकाशमान सूर्यवत् उज्वल ही रहता है। इसी भाव से विश्वामित्र ने मातंग नाम चांडाल के घर से अभक्ष्य मांस खाने की चेष्टा की देखो महा० भा० शांतिपर्व अ० ११।

इसी प्रकार :—

श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुं धर्माधर्म विचक्षणः।
प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥

(मनु० १०-१०६)

धर्माधर्म का ज्ञाता, भूखा हुआ वामदेव ऋषि प्राण रक्षार्थ कुत्ते का मांस खाने की इच्छा से भी पापी नहीं बना। एवं अजीगर्त तथा भारद्वाज आदि। (मनु० १०)

एवं छान्दोग्य १-१० में आता है कि जब उपस्थि चाकायण क्षुधार्त्त हो गया, तो उसने एक महावत से जो कुलत्थ खारहा था खाना मांगा। महावत ने कहा शोक है कि मेरे पास यही है, जो मैं खारहा हूं, इनके सिवाय मेरे पास और नहीं है। तब उपस्थि ने कहा, इन्हीं में से मुझे भी देदो। महावत ने जूठे कुलत्थ देदिये. और उपस्थि ने प्रसन्नता से खाये। जब महावत ने उपस्थि को अपना जूठा जल दिया तो उपस्थि ने वह जल न पिया और कहा कि यदि मैं इस अन्न को न

खाता तो मेरा जीवन न रहता। परन्तु मुझे पानी बहुत मिलता है। वह उषस्थि कुछ खाकर कुछ अपनी स्त्री के लिये लेगया, परन्तु उस की स्त्री को पहले कुछ भिक्षा मिल गई थी। इस लिये उसने वह कुलत्थ लेकर रख दिये। दूसरे दिन प्रातःकाल वही वासी कुलत्थ खाकर उषस्थि ने एक बड़े राजा के घर आकर यज्ञ कराया।

यह इतना बड़ा विद्वान् एक महावत के जूठे तथा वासी कुलत्थ खाता है, क्योंकि वह इस धर्म के तत्व को जानता है कि :—

१ देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि।
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत्॥

(परा० ७-४१)

देश भंग में, विदेश में, व्याधि में, तथा आपत्ति में येन केन प्रकार से अपनी शरीर रक्षा कर लेनी चाहिये, पीछे धर्म अर्थात् व्रत आदि कर लेना चाहिये।

शंख ऋषि लिखता है कि—

शरीरं धर्म सर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः।
शरीरात्स्रूयतेधर्मः पर्वतात्सलिलं यथा॥

(शंख० अ० १७)

शरीर धर्म का सर्वस्व है, शरीर से धर्म होता है-जैसे पर्वत से जल इसलिये प्रयत्न से शरीर की रक्षा करनी चाहिये॥

पराशर के (देशभंगे प्रवासे वा) से यह भी सिद्ध होता है कि आज कल जो विद्यार्थीगण विद्यार्थ अन्य देशों में जाते हैं और वहां दूसरे लोगों के हाथ से खाते हैं, वह पतित नहीं। यदि वह अभक्ष्य गोमांस आदि तथा अगम्यागमन आदि कुकर्म से अपने आप को पतित न करें।

अतएव पराशर ने कहा है कि—

यत्र कुत्र गतो वापिं सदाचारं न वर्ज्जयेत्।

जहां कहीं जाओ परन्तु अपने सदाचार को न छोड़ो॥

देवलः।

म्लेच्छैर्हतो वा चौरैर्वा कान्तारे विप्रवासिभिः।
भुक्त्वा भक्ष्य मभोज्यं तु क्षुधार्त्तेन भयेन वा॥१
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः॥२
कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियश्चरेत्।
तदर्द्धमाचरे द्वैश्यः शूद्रः पादं समाचरेत्॥३॥

र० बी० प्र० १२

जो म्लेच्छों से, वा चोरों से, अथवा बन में लुटेरों से ताड़ित हो कर अथवा अति क्षुधा के कारण अभक्ष्य भक्षण करले, व किसी के भय से अभक्ष्य भक्षण करे तब चारों वर्णों की शुद्धि इस प्रकार से होती है कि ब्राह्मण अपने देश में आकर

एक कृच्छ्र व्रत करे, क्षत्रिय उससे पौना, वैश्य अपनी शुद्धि के लिये आधा, और शूद्र एक पाद कृच्छ्र व्रत करे।

प्रायश्चित्ते विनीते तु तदा तेषां कलेवरे।
कर्त्तव्यः सूत्र संस्कारो मेखला दण्ड वर्जितः ॥२

जिसने प्रायश्चित्त कर लिया हो उनके शरीर में मेखला और दंड से रहित यज्ञोपवीत संस्कार करना योग्य है ॥

तदासौ स्वकुटुम्बानां पंक्तिं प्राप्नोति नान्यथा।
स्वभार्यां गन्तु मिच्छे च्चैव विशुद्धितः ॥६

तब प्रायश्चित्त करके अपने कुटुम्ब की पंक्ति को प्राप्त होता है यदि अपनी स्त्री के पास जाने की इच्छा करे तो शुद्ध हो कर जावे ॥

बलाद् दासी कृतो म्लेच्छैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः
अशुभं कारितं कर्म गवादि प्राणिहिंसनम् ॥९
उच्छिष्ट मार्ज्जनं चैव तथा तस्यैव भक्षनम्।
तत्स्त्रीणां च तथा संगः ताभिश्च सहभोजनम् ॥१०
कृच्छ्रान् संवत्सरं कृत्वा सांतपनान् शुद्धि हेतवे।
ब्राह्मणःक्षत्रियस्त्वर्द्धं कृच्छ्रान् कृत्वा विशुध्यति११
मासोषितश्चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति ॥

जिसको म्लेच्छों या चोरों चांडालों ने बल से अपना दास बना लिया हो, उससे गौ आदि की हिंसा कराई हो अथवा उसने उन म्लेच्छ आदिकों की जूठ खाई हो या उनकी स्त्रियों से मैथुन वा उनके साथ भोजन किया हो इसकी शुद्धि के लिये ब्राह्मण एक वर्ष तक कृच्छ्र सांतपन करे, क्षत्रिय ब्राह्मण से आधा करे, वैश्य एक मास उपवास करने से और शूद्र चौथा हिस्सा प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो जाता है॥

गृहीतो वा बला न्म्लेच्छैः स्वयं वा मिलितस्तु यः
वर्षाणि पंच सप्ताष्टौ शुद्धिस्तस्य कथं भवेत्॥
प्राजापत्य द्वयं तस्य शुद्धि रेषा प्रकीर्त्तिता॥

जिस को म्लेच्छों ने बल से दास कर लिया हो, अथवा अपनी इच्छा से मिला हो पांच, सात, आठ वर्ष म्लेच्छों के साथ रहा हो दो प्राजापत्य व्रत से उसकी शुद्धि हो जाती है॥

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पंच प्रभृति विंशतिम्।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम्॥
कक्षा गुह्यं शिखा श्मश्रु चत्वारि परिवापयेत्।
प्रहृत्यपाणि पादां तान्नखान् स्नातस्ततः शुचिः

जो म्लेच्छों के साथ पांच से बीस वर्ष पर्यन्त रहा हो उसकी दो चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है। और उसके कक्षा

गुह्य और श्मश्रु (दाढ़ी) आदि के लोम और हाथ पाओं के नख उतरवा देने चाहिये ॥

* पतित स्त्रियों की शुद्धि *

पुरुषस्य यानि पतन निमित्तानि स्त्रीणामपिता-न्येव । संसर्ग स्तदीयमेव प्रायश्चित्तार्द्धं कृत्वा प्रदातव्यम् ॥ (शौनकः)

जिन कारणों से पुरुष पतित होते हैं स्त्री भी उन्हीं कारणों से पतित होती हैं । परन्तु जिस पातक से संसर्ग हो उस का आधा प्रायश्चित्त स्त्री से कराना चाहिये । क्योंकि सब का मत है कि (स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यम्) स्त्रियों को आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये ।

रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड एव च ।
कैवर्त्त मेद भिल्लाश्च सप्तैतेऽन्त्यजाः स्मृताः १९६
एतान् गत्वा स्त्रियो मोहाद् भुक्त्वा च प्रतिगृह्यच
कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव तद्द्वयम् १९७

अ०

रजक, चमार, नट, बरुड़, कैवर्त्त, (मल्लाह) मेद, और भील यह सात अन्त्यज हैं । जो स्त्री इन पूर्वोक्त अन्त्यजों से सङ्ग करे । इनके खाले अथवा लेलेवे, वह यदि ज्ञान से हो तो

वर्ष भर कृच्छ्र व्रत करे और यदि अज्ञान से हो तो दो कृच्छ्र व्रत करे।

सकृद् भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः।
प्राजापत्येन शुद्धयेत् ऋतु प्रस्रवणेन तु ॥ १९८
वलोद्धृतां स्वयं वापि पर प्रेरितया यदि।
सकृद् भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्धयति ॥

जो स्त्री पाप कर्मी म्लेच्छों से एक वार भोगी गई हो, वह प्राजापत्य व्रत से और ऋतु आने से शुद्ध होती है।

जिस स्त्री को म्लेच्छों ने वल से भोगा हो अथवा वह स्वयं गई हो अथवा किसी की प्रेरणा से एक वार भोगी गई हो वह प्राजापत्य व्रत से शुद्ध होजाती है।

असवर्णात्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते।
अशुद्धा सा भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुंचति ॥
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजसोवापि दर्शने।
तदा सा शुद्धयते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥

(अत्रि० २६१-२६२)

असवर्णों से गर्भ धारण कर स्त्री अशुद्ध होजाती है, जब तक कि वह न निकाला जावे, अथवा ऋतु न आजावे। ऋतु के अनन्तर निर्मल कांचनवत् शुद्ध होजाती है।

यमाचार्य लिखता है कि:—

योषा विभर्त्ति या गर्भं म्लेच्छात्कामादकामतः।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या तथा वर्णेतरापि च॥
अभक्ष्यं भक्षितं चापि तस्याः शुद्धिः कथं भवेत्।
कृच्छ्र सांतपनं शुद्ध घृतैर्योनि विपाचनम्॥

यदि ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, वा शूद्री, इच्छा से अथवा अनिच्छा से किसी म्लेच्छ का गर्भ धारण करले, अथवा अभक्ष्य भक्षण करले तो कृच्छ्र सांतपन से, और शुद्ध किये घी से योनि प्रक्षालन कर शुद्ध होजाती है।

चाण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पतितं तथा।
एतान् श्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्य्युश्चान्द्रायणत्रयम्
(संवर्त्त० १७३)

श्रेष्ठ स्त्रियें अर्थात् ब्राह्मणी आदि चांडाल आदि नीच से संसर्ग कर तीन चान्द्रायण व्रत करे।

अन्तर्वत्नी तु या नारी समेत्याक्रम्य कामिता।
प्रायश्चित्तं नकुर्य्यात्सा यावद्गर्भो न निसृतः॥
गर्भे जाते व्रतं पश्चात्कुर्य्यान्मासं तु यावकम्।
न गर्भदोषस्तस्यास्ति संस्कार्य्यः स यथाविधि॥

यदि गर्भवती स्त्री बलात्कार किसी म्लेच्छादि से भोगी जावे, तो वह गर्भ के उत्पन्न होने से प्रथम कोई प्रायश्चित्त न करे।

गर्भ के उत्पन्न होने के अनन्तर मास पर्यन्त पवित्रकारक व्रत करे। गर्भ से उत्पन्न हुई सन्तान को कोई दोष नहीं, अतः उस का यथाविधि संस्कार करना चाहिये।

अति तुच्छ पातकों में तो आचार्य्यों का मत है किः—

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन।

(गरुड़० २१४-२२१)

स्त्री, बाल, और वृद्ध दोषी ही नहीं होते।

क्योंकि सब का मत है:—

रजसाशुद्ध्येतनारी नदी वेगेन शुद्ध्यति।

(अङ्गिरा० ४२)

स्त्री रज के आने से शुद्ध होजाती है, और नदी वेग से। इसी लिये शास्त्रों की आज्ञा है कि पतित की कन्या पतित नहीं होती देखो विवाह प्रकरण।

अनुक्त निष्कृतीनान्तु पापानामपनुत्तये।
शक्तिं चा वेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्॥

(मनुः ११-२०१)

जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहा, उन पापों की दूरी के

लिये शक्ति और पाप को देख कर प्रायश्चित्त कल्पना करना चाहिये।

अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च।
तच्छुद्ध्यै पावनं कुर्य्याश्चान्द्रायणं समाहितः॥
(वृ॰ पा॰ ६-१११)

जिन पापों वा उपपापों का वर्णन नहीं किया गया उन सब की शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।

मैंने पीछे दर्शाया है कि (देशं कालं वयः शक्ति) के अनुसार इस में न्यूनाधिकता होसकी है मनु बतलाता है कि:—

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते।
तस्मात् समागमेतेषामेनो विख्याप्य शुध्यति॥८३
तेषां वेदाविदां ब्रूयु स्त्रयोप्येनः सुनिष्कृतिम्।
सा तेषां पावनाय स्यात्पवित्रा विदुषां हि वाक् ८४
(मनुः अ॰ ११)

ब्राह्मण धर्म का मूल है, और राजा (क्षत्रिय) अग्र है इस लिये उनके समागम (सभा) में अपने पाप का निवेदन कर प्रायश्चित्ती शुद्ध होजाता है। क्योंकि तीन वेदवेत्ता विद्वान् जिस पाप के लिये जो प्रायश्चित्त (दण्ड) नियत करें उसी से पापी की शुद्धि होजाती है क्योंकि विद्वानों की वाणी ही पवित्र होती है।

पराशर कहता है:—

तेहि पाप कृतां वैद्याः हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्याः बुद्धिमन्तो रुजापहा ॥

(पराशर २९७)

वे (पूर्वोक्त) विद्वान् लोग पातकियों के पाप दूर करने के लिये उनके वैद्य हैं जैसे रोगी के रोग दूर करने वाले भिषग् (हकीम) ।

इसी सिद्धान्तानुसार विद्वानों ने देश कालानुसार गायत्री जाप से, वेद पाठ से, प्राणायाम से, ईश्वर ध्यान से, राम नाम से तीर्थ स्नान से, पश्चात्ताप से यहां तक कि ब्राह्मणों के चर्णामृत से ही शुद्धि का उपदेश किया न केवल उपदेश किया प्रत्युत इस पर अनुष्ठान किया । जैसा कि कई एक उदाहरणों से प्रतीत होता है ।

* गायत्री से शुद्धिः *

शतं जप्ता तु सा देवी स्वल्प पाप प्रणाशिनी ।
तथा सहस्र जप्ता तु पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥
दश सहस्र जाप्येन सर्वाकिल्विष नाशिनी ।
लक्षं जप्तातु सादेवी महापातक नाशिनी ॥ २ ॥
सुवर्णस्तेय कृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।

सुरापश्च विशुद्ध्यन्ति लक्षं जप्त्वा न संशयः॥

(शंखा १२—२)

सौ बार गायत्री जप से छोटे २ पाप दूर होजाते हैं। सहस्र बार के जप से पातकों से शुद्धि होजाती है दश हजार जप से बहुत से पापों का नाश होजाता है और लक्षबार जप करने से ब्रह्महत्या आदि महापातकों की शुद्धि होजाती है।

संवर्त्त—महापातक संयुक्तो लक्षहोम सदाद्विजः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्याचैव पावितः॥२१६

महापातकी सप्त व्याहृतियों से लक्ष आहुति युक्त हवन करके तथा गायत्री जप से शुद्ध होजाता है।

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम्।
गत्वाऽरण्ये नदी तीरे सर्व पापविशुद्धये॥ २१७

संपूर्ण पापों की शुद्धि के लिये वन में जाकर नदी के किनारे वेद माता गायत्री का अभ्यास करे।

ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः।
पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति। २२०

पांच रात्रि तक गायत्री का जप करता हुआ पुरुष इस जन्म और अन्य जन्म के सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है।

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृति संयुक्तां प्रणवेन च संजपेत्॥ २२१

गायत्री से बढ़ कर कोई पापियों का शोधक नहीं।
अतः महाव्याहृति और ओंकार से युक्त गायत्री का जप करे।

अयाज्य याजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम्।
गायत्र्यष्ट सहस्रं तु जपं कृत्वा विशुध्यति॥२२३

अयोग्य को यज्ञ करा और निन्दित अन्न खाकर आठ
हज़ार गायत्री जप से शुद्ध होजाता है।

वृ०परा०-गायत्र्याःशतसाहस्रं सर्वपापहरं स्मृतम्
(वृ० पा० ६। २९१)

एक लक्ष गायत्री जप से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

ग०पु०-गायत्री परमादेवी भुक्तिमुक्ति प्रदा च तां।
यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि॥
(गरुड़ पु० ३७। १)

गायत्री देवी भुक्ति और मुक्ति के देने वाली है। जो इस
का जप करता है उसके बड़े से बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं।

चतुर्विंशतिमतं—

गायत्र्यास्तु जपेत्कोटिं ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
लक्षाशीतिं जपेद् यस्तु सुरापानाद्वि मुच्यते।१
पुनाति हेमहर्तारं गायत्र्यालक्षं सप्तति।
गायत्र्या लक्ष षष्ट्या तु मुच्यते गुरुतल्पगः॥२

एक करोड़ गायत्री जप से ब्रह्मघाती, अस्सी हजार गायत्री जप से मद्यपायी (शराबी) सत्तर हज़ार जप से स्वर्ण चुराने वाले और साठ हज़ार जप से गुरु स्त्री से संसर्ग करने वाले की शुद्धि हो जाती है।

मरीचिः-ब्रह्म सूत्रं विना भुंक्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा
गायत्र्यष्ट सहस्रेण प्राणायामेन शुध्यतिं ॥

जो पुरुष बिना यज्ञोपवीत के भोजन करता है या मूत्र-पुरी पोत्सर्ग करता है उसकी शुद्धि आठ सहस्र गायत्री जप तथा प्राणायाम से होती है।

याज्ञवल्क्य :—

गोष्ठे वसन् ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रतः।
गायत्री जाप्य निरतःशुध्यतेऽसत् प्रतिग्रहात्२८९

(या॰ प्रा॰ प्र॰ ५)

असत् पतिग्रह अर्थात् पतित आदि से दान लेकर एक मास पर्य्यन्त दुग्ध पान करता हुआ ब्रह्मचर्य्य धारण कर गो-शाला में निवास कर गायत्री जाप से शुद्ध होता है।

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याःसहस्राणि समाहितः।
मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत् प्रतिग्रहात् ॥

मनु॰

गोष्ठ में निवासकर तीन हज़ार गायत्री जप कर असत् प्रतिग्रह दोष से विमुक्त हो जाता है।

* रहस्य प्रायश्चित्तानि *

ऋक् संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
(मनु० ११-२६१)

ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, वा सामवेद संहिता, उपनिषदादि सहित तीन बार पाठ कर सब पापों से छूट जाता है।

यथा महा ह्रदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं विनश्यति ।
तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति।११-२६३

जैसे बड़ी नदी में फेंका हुआ ढेला गल जाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण पाप वेदों की त्रिरावृत्ति से नष्ट हो जाते हैं।

संवर्त–ऋग्वेद मभ्यसेद् यस्तु यजुः शाखाम-
थापिवा । सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः
प्रमुच्यते ॥ २२९ ॥

जो ऋग् यजुः अथवा सरहस्य साम का पाठ करता है वह सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है।

याज्ञवल्क्य :—

त्रिरात्रो पोषितो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् ।

अन्तर्जले विशुद्धयेत दत्वा गांच पयस्विनीम् ३०१

ब्रह्मघाती जल में खड़ा हो उपवास रख तीन दिन अघमर्षण (ऋतं च सत्यं च) मन्त्र से और एक गौ दान कर शुद्ध हो जाता है।

सुमन्तुः—देवद्विज गुरुहन्ताऽप्सु निमग्नोऽघमर्षं सूक्तं त्रिरावर्त्तयेत् ।

देवता, ब्राह्मण, गुरु के हनन करने वाला जल में खड़ा हो तीन दिन अघमर्षण सूक्त को जपे।

याज्ञवल्क्य :—

त्रिरात्रो पोषितो भूत्वा कूश्माण्डीभिर्घृतं शुचिः।

सुरापी (शराब पीने वाला) (यद्देवादेव हऽनं) इत्यादि ऋचाओं से चालीस आहुति देकर और तीन दिन उपवास कर शुद्ध हो जाता है।

ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु रुद्राजापीजलेस्थितः।

या० ३०३

स्वर्ण चुराने वाला ब्राह्मण जल में खड़ा हो कर तीन दिन (नमस्तेरुद्रमन्यवे) इत्यादि मंत्रों का जाप कर शुद्ध होजाता है।

सहस्राशीर्षाजापी तु मुच्यते गुरुतल्पगः॥३०४

गुरु तल्पी सहस्रशीर्षा आदि पुरुष सूक्त के जाप से और गोदान से शुद्ध होता है।

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञ क्रियाक्षमाः
नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥
(मनु० ११ । २४५)

प्रतिदिन यथाशक्ति वेदाध्ययन, पंचयज्ञों का करना, तथा क्षमा कुसंस्कार रूप पापों का नाश करते हैं।

तथैधस्तेजसा वन्हिः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् ॥२

जैसे अग्नि समीप स्थित काष्ठों को क्षण में भस्म कर देता है एवं वेदवित ज्ञानाग्नि से पापों का नाश करता है।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वेद पढ़ने वाला जो चाहे करे, अथवा उसको कोई पाप नहीं लगता। तात्पर्य यह है कि बहुत से पाप अज्ञान और अकाम से ही हो जाते हैं उन सब की शुद्धि वेदपाठ से हो जाती है।

मनु कहता है :—

अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुध्यति ।
(मनु० ११–४५)

अनिच्छा से किये पाप वेदाभ्यास से शुद्ध हो जाते हैं।

न वेद बलमाश्रित्य पापकर्म रतिर्भवेत् ।
अज्ञानाच्च प्रमादाच्च दह्यते कर्म नेतरत् ॥

वेद के घमण्ड से पाप कर्म नहीं करना चाहिये क्योंकि अज्ञान और प्रमाद से किये पाप ही वेदाभ्यास से नष्ट होते हैं ॥

वैदिकज्ञान से शुद्धि और परिवर्त्तन, व्याधकर्मा के दृष्टान्त से स्पष्ट है। देखो पृ० ।

* वेदों में शुद्धि *

मनु बतलाता है :—

कौत्सं जप्त्वाप इत्येतत् वासिष्टं च प्रतीत्यृचम् ।
माहित्रं शुद्ध वत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥

मनु० ११-२४६

कुल्लूक-कौत्सऋषि के कहे हुए (अपनः शोशुचदघं) इस सूक्त को वसिष्ट से कहे हुए प्रतिस्तोम इस ऋचा को और (माहित्रीणाम वोऽस्तु) इस सूक्त को तथा(शुद्धवत्यः,-एतोन्विन्द्रंस्तवाम)इतनी ऋचाओं को एक मास पर्यन्त प्रतिदिन सोलह बार जप कर शराब पीने वाला वा सुरा पान के प्रायश्चित्त का अधिकारी शुद्ध जाता है।

सकृज्जप्त्वाऽस्य वामीयं शिव संकल्प मेवच ।
अप हृत्य सुवर्णं तु क्षणाद् भवति निर्मलः ।२५०

ब्राह्मण के सुवर्ण को चुरा कर एक मास पर्यंत अस्यवाम के कहे हुए और शिव संकल्प (यज्जाग्रतो) इत्यादि का जप कर उसी क्षण शुद्ध हो जाता है।

हविष्यन्तीयमभ्यस्य नतमं ह इतीति ।
जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरू तल्पगः ।२५१

जिसने (गुरू पिता-उपाध्याम भ्राता आदि की स्त्री अथवा भागनी सगोत्रा आदि से गमन किया हो) हविष्यांतमजरं इत्यादि २१ ऋचाओं का अथवा न तमं हो इनको व तन्मेमनः- इनको अथवा पुरुष सूक्त को एक मास पर्यंत प्रति दिन एक वार जप कर गुरुतल्पग के पाप से छूट जाता है ।

एनसां स्थूल सूक्ष्माणां चिकीर्षन्नप. नोदनम् ।
अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किंचेद मितीति वा ।२५२।

छोटे बड़े पापों को प्रायश्चित्त चाहने वाला मनुष्य (अवेति ऋ० १-२४-१४) अर्थात् महा व उपपातक ।

अथवा (यत्किंचेद मिति ऋ० ७-८९-५) का एक वर्ष प्रति दिन एक वार जप करे ।

प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ।
जपंस्तरत्समं दीयं पूयते मानवस्त्र्यहात् ॥ २५३

अयोग्य दान को लेकर अथवा अभोज्यान्न खाकर (तरत्समं) ऋ० दीधा व इन चार ऋचाओं का तीन दिन जप करने से शुद्ध होजाता है । इत्यादि अनेक मंत्र ऋषियों ने शुद्धि के लिये दर्शाये हैं जिनमें से चार मंत्र दिग्दर्शनमात्र व्याख्या

सहित उद्धृत किये जाते हैं । जिन से पाठकों को निश्चय होगा कि वस्तुतया उनमें शुद्धि की ही प्रार्थना पाई जाती है ।

कौत्सं—अपनः शोशुचदघ मग्ने ! शुशुग्ध्यारयिम्। अपनः शोशुचदघम् ऋ० अ८ १ अ० १५ व० ५ ॥

* हे अग्ने ! हमारा पाप हम से दूर हो—हमारा ऐश्वर्य बढ़े पुनः हमारा पाप दूर हो—इस पर सायणाचार्य लिखता है ।;

उक्तार्थमपि वाक्यं आदरातिशय द्योतनाय पुनः पठ्यते । अवश्य मस्माक मघं विनश्यतु ॥

एक बार कहे हुए वाक्य को आदर के लिये पुनः पढ़ा है कि अवश्य ही हमारा पाप नाश हो ॥

प्रथम अग्नि (अग्रणी भवति यज्ञेषु) के अनुसार यज्ञ हवन का अग्नि ।

दूसरा (एकं सद्विप्रावहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः) अनुसार परमात्मा ।

और तीसरा प्रभाव शाली तेजस्वी राजा वा अग्रणी अर्थात् सभापति—

इस से यह सिद्ध होता है कि अग्नि में हवन करने से और परमात्मा की स्तुति प्रार्थना आदि भजन से और सभा-

---

* नोट—यहां अग्नि शब्द से तीन अर्थ जानने ।

पति वा सभा की अनुग्रह या दया से मनुष्य शुद्ध होजाता है।

१ यत्किंचेदं वरुण दैव्येजनेऽभिद्रोहं मनुष्या-श्चरामसि। अचित्तीयत्तवधर्मायुयोऽपिममान-स्तस्यादेनसोदेवरीरिषः ॥ ऋ० अ८-५-५ व

हे वरुण! हम मनुष्य लोग विद्वानों से जो अपकार वा द्रोह करते हैं अथवा अज्ञान से जो तेरे धर्म पथ का उल्लंघन करते हैं हे देव! हमें उस पाप से बचा।

"एवं नतमंहो न दुरितं" इत्यादि मंत्र से साफ है कि जिस पर विद्वान जन अनुग्रह करते हैं उसका कोई पाप नहीं रहता इत्यादि।

प्राणायाम से शुद्धिः।

याज्ञवल्क्यः—

प्राणायाम शतं कुर्य्यात् सर्व पापा पनुत्तये॥ ५३॥

संपूर्ण पापों की निवृत्ति के लिये सौ प्राणायाम करे।

मनोवाक् कायजं दोषं प्राणायामैर्दहेद् द्विजः।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत्॥

गरु० पु० अ० ३६।

प्राणायाम से मानसिक वाचिक, और कायिक-दोष दग्ध हो जाते हैं॥

संवर्त्तः—

मानसं वाचिकं पापं कायेनैव च यत्कृतम् ।
तत्सर्वं नाश मायाति प्राणायाम प्रभावतः २२८

मानसिक, वाचिक और कायिक, पाप प्राणायाम के प्रभाव से नष्ट होजाते हैं ॥

सव्याहृति प्रणवकाः प्राणा यामास्तु षोडश ।
अपिभ्रूण हणं मासात्पुनन्त्यह रहः कृताः ॥

मनु ११ । २४८

ओंकार और व्याहृति से संयुक्त प्रतिदिन किए हुए सोलह प्राणायाम एक मास में ही भ्रूण हत्या वाले को भी पवित्र कर देते हैं ।

याज्ञवल्क्य :—

प्राणायाम शतं कार्यं सर्व पापा पनुत्तये ।
उपपातक जाताना मनादिष्टस्य चैव हि ॥

प्रा० प्र० ५ श्लो० ३०५

गोवधादि ५६ उपपातक अनादिष्ट रहस्य तथा जाति भ्रंशक आदि पापों के नष्ट करने के लिये सौ प्राणायाम करे ।

बौधायनः—

अपिवाक् चक्षुः श्रोत्रंत्वक् प्राण मनो व्यति क्रमेषु
त्रिभिः प्राणायामैः शुध्यति ॥

मन वाणी तथा श्रोत्रादि के व्यतिक्रम में तीन १ प्राणायाम करके शुद्धि होती है ॥

पुराणों में गंगादि तीर्थ स्नान वा हरि नाम से शुद्धिः—

* गंगास्नान *

अग्नौ प्रासं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम !
तथा गंगावगाहस्तु सर्व पापं प्रधूयते ॥

भा० अनु०

जैसे अग्नि में रुई भस्म हो जाती है, एवं गंगा स्नान पापों को नष्ट करता है।

वाङ्मनः कर्मजैर्ग्रस्तः पापैरपि पुमानिह ।
वीक्ष्य गंगां भवेत्पूतोऽत्र मे नास्ति संशयः ॥

मन वाणी और शरीर के पापों से युक्त पुरुष गंगा के दर्शन मात्र से शुद्ध हो जाता है।

गंगा गंगेति यैर्नाम योजनानां शतैरपि ।
स्थितै रूच्चारितं हन्ति पापं जन्म त्रयार्जितम् ॥

वि० पु० अ० ८

जो सौ योजन (४०० कोस) पर बैठ कर भी गंगा का नाम उच्चारण करता है उसके तीन जन्म के पाप नष्ट होजाते हैं।

पौराणिक समय में ऐसी शुद्धियें की गई जिन के कुछ

उदाहरण यहां उद्धृत किये जाते । देखो पद्म पुराण भूखंड २ अध्याय ९१

कुंजलक उवाच ।

ब्रह्महत्याभिभूतस्तु सहस्राक्षो यदा पुनः ।
गौतमस्य प्रियां संगादगम्या गमनं कृतम् ॥ १
संजातं पातकं तस्य त्यक्तो देवैश्च ब्राह्मणैः ।
सहस्राक्षस्तपस्तेपे निरालम्बो निराश्रयः ॥ २

कुंजलक ने कहा । जब इन्द्र ने ब्रह्महत्या की और गौतम स्त्री संसर्ग कर अगम्यागमन किया, तो उसे देवता और ब्राह्मणों ने त्याग दिया—और वह निराश्रय होकर तप करने लगा ॥

तपोऽन्ते देवताः सर्वा ऋषयो यक्ष किन्नराः ।
देवराजस्य पूजार्थं मभिषेकं प्रचक्रिरे ॥ ३
देशं मालवकं नीत्वा देवराजं सुतोत्तमाः ।
चक्रे स्नानं महाभाग कुंभैरुदकपूरितैः ॥ ४

तप के अनन्तर देवताओं ने उसकी शुद्धि के लिये उस का अभिषेक किया । मालवा देश में लेजा कर देवराज (इन्द्र को) स्नान कराया ॥

स्नापितुं प्रथमं नीतो वाराणस्यां स्वयं ततः ।
प्रयागे तु सहस्राक्ष अर्घतीर्थे ततः पुनः ॥ ५

पुष्करे च महात्मासौ स्नापितः स्वयमेवहि ।
ब्रह्मादिभिः सुरैः सर्वैर्मुनि वृन्दै र्द्विजोत्तम ॥ ६

हे द्विज श्रेष्ठ ! देवताओं ने इन्द्र को प्रथम काशी में पुनः अर्घ तीर्थ और प्रयाग तथा पुष्कर में *स्नान कराया ॥

नागैर्वृक्षै र्नाग सर्वैः गन्धर्वै स्तुसकिन्नरैः ।
स्नापितो देव राजस्तु वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतः ॥ ७
मुनिभिः सर्व पापघ्नैस्तास्मिन् काले द्विजोत्तम !
शुद्धे तस्मिन् महाभागे सहस्राक्षे महात्मनि ॥ ८
ब्रह्महत्या गता तस्य अगम्या गमनं तथा ॥ ९

सम्पूर्ण गन्धर्व आदि देवताओं से शुद्ध किये उस महात्मा इन्द्र का ब्रह्महत्या दोष तथा अगम्यागमन का दोष दूर हुआ ।

२ कुंजलक उवाच ।

अस्ति पांचालदेशेषु विदुरो नाम क्षत्रियः ।
तेन मोह प्रसङ्गेन ब्राह्मणो निहितः पुरः ॥ १८
शिखासूत्र विहीनस्तु तिलकेन विवर्जितः ।
भिक्षार्थे मटने सोऽपि ब्रह्मघ्नोऽहं समागतः ॥१९

* ये सर्वसाधारण के विचार के लिये समय २ की अवस्था दिखाई है, इस में लेखक के मतामत का संबन्ध नहीं ॥

ब्रह्मघ्नाय सुरापाय भिक्षाचान्नं प्रदीयताम् ।
गृहष्वेवं समस्तेषु भ्रमतो याचते पुरा ॥ २०

पांचाल (पंजाब) में एक विदुर नाम क्षत्रिय रहता था । उसने मोह वश से ब्रह्महत्या करदी । तब वह शिखा सूत्र (यज्ञोपवीत) और तिलक से शून्य होकर, भिक्षा के लिये लोगों के घरों में जाता और कहता था कि मैं ब्रह्मघाती तथा शराबी हूं मुझे भिक्षा दीजिये ।

एवं सर्वेषु तीर्थेषु अटित्वेव समागतः ।
ब्रह्महत्या न तस्यापि प्रयाति द्विजसत्तम ॥ २१

इस प्रकार वह सम्पूर्ण तीर्थों में घूमा परन्तु उस की ब्रह्म हत्या दूर न हुई ।

वृक्षच्छायां समाश्रित्य दह्यमाने चेतसा ।
संस्थितो विदुरः पापो दुःख शोक समन्वितः॥

तब दुःखी हुआ हुआ वह पातकी विदुर एक वृक्ष की छाया में बैठ गया ।

चन्द्र शर्मा ततो विप्रो महामोहेन पीडितः ।
आवसन्मागधे देशे गुरुघातकरश्च सः ॥ २३
स्वजनैर्बन्धु वर्गैश्च परित्यक्तोदुरात्मवान् ।
सहि तत्र समायातो यत्रासौ विदुरः स्थितः॥

इतने में एक मगध देश निवासी चन्द्रशर्मा नाम ब्राह्मण जिसने गुरु को मार डाला था और जो अपने सम्बन्धियों से त्यागा हुआ था वहां आगया जहां विदुर बैठा था।

शिखासूत्र विहीनस्तु विप्रालिङ्गै र्विवर्ज्जितः।
तदासौ पृच्छितस्तेन विदुरेण दुरात्मना॥२५
भवान् कोहि समायातो दुर्भगो दग्धमानसः।
विप्रालिङ्ग विहीनस्तु कस्मात् त्वं भ्रमसे महीम् २६

तब उसको शिखा सूत्रादि चिन्हों से रहित देखकर विदुर ने पूछा कि तुम कौन हो और क्यों इतने दुःखी प्रतीत होते हो और द्विजों के चिन्हों से शून्य क्यों हो॥

विदुरेणोक्तमात्रस्तु चन्द्रशर्म्मा द्विजाधमः।
आचष्टे सर्व मेवापि यथापूर्वं कृतं स्वकम्॥२७
पातकं च महाघोरं वसता च गुरोर्गृहे।
महा मोह गते नापि क्रोधेना कुलितेन च॥२८
गुरोर्घातः कृतः पूर्वं तेन दग्धोऽस्मि सांप्रतम्।
चन्द्रशर्मा च वृत्तान्त मुक्त्वा सर्व म पृच्छत् २९

तब विदुर ने अपना वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि गुरु के घर में रहते हुए मैंने मोह से गुरु को मारकर एक महापाप किया इस लिये अब दुःखी हुआ फिरता हूं, आप अपना हाल कहिये।

भवान् कोहि सुदुःखात्मा वृक्षच्छायां समाश्रितः।
विदुरेण समासेन आत्मपापं निवेदितम् ॥ ३०

कि आप कौन हैं और क्यों यहां दुःखी से हो कर बैठे हैं। तब विदुर ने भी अपना सारा हाल सुनाया।

अथ कश्चिद् द्विजः प्राप्तस्तृतीयः श्रमकर्पितः।
वेदशर्मेति वै नाम वहुपातक संचयः ॥३१

तदनन्तर वेद शर्मा नाम एक तीसरा मनुष्य थका हुआ वहां आया जिसने कि बहुत से पाप किये थे।

द्वाभ्यामपि संपृष्टः को भवान् दुःखिताकृतिः।
कस्माद् भ्रमसि वै पृथिवीं वद भावन्त्वमात्मनः ३२
वेद शर्मा ततः सर्व मात्म चेष्टित मेवच।
कथयामास ताभ्यां वै स्वगम्यागमनं कृतम् ३३
धिक् कृतः सर्व लोकैश्च अन्यैः स्वजनवान्धवैः।
तेन पापेन संलिप्तो भ्रमाम्येवं महीमिमाम् ॥३४

तब उन दोनों ने उसे पूछा कि तुम कौन हो ? तुम्हारा चेहरा दुःखी सा प्रतीत होता है किस लिये फिर रहे हो।

तब वेदशर्मा ने अपनी करतूत सुनाई कि मैंने अगम्या गमन किया, अतः लोगों ने फिटकार कर बाहर निकाल दिया इसी लिये भटकता फिरता हूं।

वंजुलो नाम वैश्योऽथ सुरा पायी समाययौ ।
स गोघ्नश्च विशेषेण तैश्च पृष्टो यथा पुरा ।३५
तेन आवेदितं सर्वं पातकं यत् पुरा कृतम् ।
तैरा कर्णित मन्यैश्च सर्वं तस्य प्रभाषितम् ।३६
एवं चत्वारः पापिष्ठा एकस्थानं समाश्रिताः३७

अनन्तर उन के पास वंजुल नाम एक वैश्य आया, जो शराब पीने वाला था और जिसने गौ घात का पाप भी किया था । तब उन तीनों ने उस से वृतान्त पूछा और उसने अपनी कहानी सुनाई ।

इस प्रकार वह चारों पापी वहां इकट्ठे हुए ॥

तत्रकश्चित्समायातः सिद्धश्चैव महायशाः ।
तेन पृष्टः सुदुःखार्त्ता भवन्तः केन दुःखिताः २
स तैः प्रोक्तो महाप्राज्ञः सर्वज्ञानविशारदः ।
तेषां ज्ञात्वा महापापं कृपां चक्रे सुपुण्यभाक् ३

इतने में वहां एक सिद्ध आया, उसने उन चारों के दुःख का कारण पूछा । जब उन्हों ने अपना २ हाल कहा, तो उसने उनको उस महा पाप से शुद्ध करने का उपाय बताया ।

सिद्ध उवाच—

अमासोम समायोगे प्रयागः पुष्करश्चयः ।

अथ तीर्थं तृतीयं तु वाराणसी चतुर्थिका ॥४
गच्छन्तु तत्र वै यूयं चत्वारः पातकान्विताः ।
गंगाम्भसि यदा स्नाता स्तदा मुक्ता भविष्यथ ।५
पातकेभ्यो न संदेहो निर्मलत्व गमिष्यथ ।
आदिष्टास्ते वै सर्वे प्रणेमुस्तं प्रयत्नतः ॥६॥

सिद्ध ने कहा कि तुम चारों पातकी सोमावती अमावस्या को प्रयाग, पुष्कर, अर्धतीर्थ और काशी में जाओ अनंतर जब तुम गंगाजल में स्नान करोगे अवश्य इन पापों से छूट कर शुद्ध हो जाओगे । तब उन्हों ने उस को प्रणाम किया और कलजर वन से चलकर वाराणसि आदि से होते हुए वह चारों पापी :—

तस्मिन् पर्वणि संप्राप्ते स्नाता गंगां भसि द्विज।
स्नान मात्रेण मुक्तास्तु गोवधाद्यैश्च किल्विषैः १०

प० पु० भू० खं० २ अ० ४२

इस पर्व में गंगा में नहाये और स्नान मात्र से वह गो वध आदि पाप से छूट गये ।

विशेष क्या लिखें पुराणों में तो ब्राह्मणों के चरणामृत से भी शुद्धि का उपदेश पाया जाता है ।

नश्यन्ति सर्व पापानि द्विज हत्यादि कानि च ।
कण मात्रं भजेद् यस्तु विप्रांघ्रि सलिलं नरः ४

यो नरश्चरणौ धौतं कुर्य्याद्धस्तेन भक्तितः ।
द्विजाते वच्मि सत्यं ते स मुक्तः सर्व पातकैः ॥१०

प० पु० अ० खं० ५ अ० १४

जो ब्राह्मणों का चरणामृत लेता है उस के ब्रह्म हत्या आदि दोष नष्ट हो जाते हैं।

जो मनुष्य ब्राह्मणों के चरणों को भक्ति से धोता है, मैं सत्य कहता हूं कि वह संपूर्ण पापों से छूट जाता है।

जैसा कि इसीके आगे भीम नाम शूद्र का उदाहरण दिया।

* नाम से शुद्धिः *

प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपः कर्मात्मकानि वै ।
यानि तेषा म शेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।३७

वि० पु० अं० २ अ० ६

तप्त कृच्छ्र आदि जितने भी व्रत कहे हैं उन सब से बढ़ कर कृष्ण नाम का स्मरण है।

श्रीराम राम रामेति ये वन्दत्यपि पापिनः ।
पाप कोटि सहस्रेभ्यस्तेषां संतरणं ध्रुवम् ॥

गुरु० पु०

तीन बार राम राम कहने से पापी करोड़ों पापों से छूट जाते हैं।

गो० स्वा० तुलसीदासजी श्रीरामचन्द्रजी के सखा गुह का वर्णन करते हुए लिखते हैं।

दोहा–रामराम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं
उल्टे नाम जपत जग जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।
श्वपच शबर खल यमन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥
१६ तु० रा० अ० कां०।

जो राम राम कहकर जम्हाई लेते हैं उन के सामने पाप नहीं आते हैं। संसार जानता है कि उलटा नाम (मरा मरा) जपने से ही बालमीकि (मुक्त) ब्रह्मसम हुए।

श्वपच (चांडाल) शबर (भील) यवन (म्लेच्छ) नीच कोली आदि राम राम कहने से पवित्र हो जाते हैं।

गुह स्वयं भरत जी को कहता है कि :—

कपटी कायर कुमति कुजाति, लोक वेद बाहर सब भांती।
राम कीन्ह आपनो जबहींते, भयउं भुवन भूषण तबहींते॥

मैं कपटी कायर कुबुद्धि कुजाती लोक और वेद से बाहिर था। परन्तु जब से रामचन्द्र जी ने मुझे अपना किया तभी से लोक का आभूषण बन गया।

❀ ध्यान से शुद्धिः ❀

नहि ध्यानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।
श्वपचान्नानि भुंजानः पापी नैवात्र जायते॥
गरुड़ पु० अ० २२२ श्लोक० ३५

ध्यान के तुल्य और कोई पवित्र नहीं है। ध्यान युक्त पुरुष चांडाल का अन्न खाकर भी पापी नहीं होता।

ध्यायेत् नाणायणं देवं स्नान दानादि कर्मसु।

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः ॥

गरुड़ पु० अ० २२२ श्लो० २८

स्नान दानादि कर्मों में सम्पूर्ण प्रायश्चित्तों में विशेष करके दुष्कर्मों की शुद्धि में नारायण का ध्यान करे।

कृतेपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते।
प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरे स्संस्मरणं परम् ॥

वि० पु० अं० २ अ० ६। ३८

जिस की पातकों से अनुरक्ति हो गई हो उस के लिये हरि का ध्यान ही प्रायश्चित्त है ॥

उपपातक संघेषु पातकेषु महत्स्वपि।
प्रविश्य रजनी पादं ब्रह्मध्यानं समाचरेत् ॥

जिस को सैकड़ों उपपातक और महापातक लगे हों, वे सब प्रभात में ब्रह्म ध्यान करने से छूट जाते हैं।

ख्यापनेनानु तापेन तपसा ध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेनचापादि ॥

मनु० ११। २२७

पापी पाप के प्रकट करने से, पश्चाताप करने से वेदाध्ययन तथा दान से शुद्ध हो जाता है ;

यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयंकृत्वानु भाषते।
तथा तथा त्वचेवाहि स्तेनऽधर्मेण मुच्यते ॥ २२८

मनुष्य ज्यों २ अपने किये अधर्म को प्रकट करता है त्यों २ उस अधर्म से छूट जाता है, जैसे सर्प कोचली से ।

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात् प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयतेतु स ॥

मनु० ११ । २३०

पाप करके पश्चात् संताप युक्त होने से उस पाप से बचता है और " फिर ऐसा नहीं करूंगा " ऐसा कह कर निवृत्त होने से पवित्र हो जाता है ।

अज्ञानाद् यदि वा ज्ञानात् कृत्वा कर्म सुदुष्कृतम् ।
तस्माद्वि शुद्धि मन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत् ॥

ज्ञान से अथवा अज्ञान से अशुभ कर्म (पाप) करके उस से छूटने की इच्छा करने वाला, दुबारा उसको न करे ।

पश्चात्तापो निराहाराः सर्वेषां शुद्धि हेतवः ॥

या० प्रा० प्र० ३

पश्चात्ताप निराहारादि सब शुद्धि के साधन हैं ॥

महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य कारिणः ।
तपसैव सुतप्तेन मुच्यते सर्व किल्विषात् ॥

मनु० ११ । २३९

महा पातक और शेष उप पातक युक्त, मनुष्य तप करने से ही उन पापों से छूट जाते हैं ।

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्ति भिर्जनाः।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः॥
मनु० ११।२४१

मनुष्य मन, वचन, और कर्म से जो पाप करते हैं उन सब को तप करने वाले तप से भस्म कर देते हैं।

सर्व साधारण व्रत।

यानि कानि च पापानि गुरोर्गुरुतराण्यपि।
कृच्छ्राति कृच्छ्र चान्द्रैयैः शुध्यन्ते मनुरब्रवीत्॥
षट्त्रिंशन्मत।

बड़े से बड़े पाप भी कृच्छ्र अतिकृच्छ्र और चान्द्रायण से नष्ट हो जाते हैं।

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व पापापनोदनः।
मनु० ११।२१५

पराक कृच्छ्र व्रत सब पापों को दूर करने वाला है॥

दुरितानां दुरिष्टानां पापानां महतामपि॥
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव सर्व पाप प्रणाशनम्॥
(उशनः)

कृच्छ्र और चान्द्रायण सम्पूर्ण पातक और महापातकों को नष्ट कर देता है।

यत्रोक्तं यत्र वा नोक्तं महापातक नाशनम्।
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण शुध्यतेनात्र संशयः॥उशनः

जहां कहा हो वा न कहा हो, महा पातक के नाश करने वाले प्राजापत्य या कृच्छ्र व्रत से शुद्धि कर लेनी चाहिये ॥

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ।
सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थ मादृतः ॥

मनुः, ११ । २२५

संपूर्ण व्रतों में आदर सहित यथा शक्ति गायत्री मंत्र तथा अन्य पवित्र मंत्रों का जप करना चाहिये ॥

आवश्यक बातें ॥

शुद्धि (प्रायश्चित्त) निर्णय में निम्न लिखित नियमों को नहीं भूलना चाहिये ॥

१ गौतमः—

एनांसि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघूनि ॥

विद्वानों को चाहिये कि बड़े पाप में बड़ा और छोटे में छोटा प्रायश्चित्त नियत करें ॥

विष्णु० पु०

पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे तु तद्विदः ।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय ! जगुः स्वायंभुवादयः ॥

अं० २ अ० ६ । ३६

हे मैत्रेय ! धर्मवेत्ता मन्वादिकों ने बड़े में बड़ा और छोटे में छोटा प्रायश्चित्त नियत किया है ।

शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥

मनुः ११ । २०६

शक्ति और पाप को देख कर प्रायश्चित्त कराना चाहिये ॥

२ विहितं यद कामानां कामात् तद् द्विगुणं भवेत् ॥

जो प्रायश्चित्त अनिच्छित पाप में नियत किया है, वह इच्छा से किये पाप में दुगना कर देना चाहिये ॥

और जो इच्छित में दर्शाया गया है उसको अनिच्छत में आधा कर देना चाहिये ॥

३ विप्रे तु सकलं देयं पादोनं क्षत्रिये स्मृतम् ।
वैश्येऽर्द्ध पाद एकस्तु शस्यते शूद्र जातिषु ॥

वृ० विष्णुः ।

जिस पाप में जो व्रत विधान किया हो, उस को ब्राह्मण पूरा करे क्षत्रिय चौथाई कम, वैश्य आधा–और शूद्र एक पाद (चौथा हिस्सा) करे । अर्थात् जिसको ब्राह्मण चार दिन करे तो क्षत्रिय तीन दिन–वैश्य दो दिन और शूद्र एक दिन करे ॥

४ स्त्रीणां बाल वृद्धानां क्षयिणां कुशरीरिणाम् ।
उपवासाद्यशक्तानां कर्त्तव्यो ऽनुग्रहश्च तैः ॥

वृ० पा० अ० ८

स्त्री, बाल, वृद्ध, रोगी आदि उपवास में असमर्थों पर दया करनी चाहिये ॥

स्त्रीणामर्द्धं प्रदातव्यं वृद्धानां रोगिणां तथा ।
पादो बालेषु दातव्यः सर्व पापेष्वयं विधिः ॥

विष्णु स्मृतिः ।

स्त्री वृद्ध और रोगी का आधा प्रायश्चित्त कराना चाहिये । और बालों को चौथाई ॥

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यून षोडशः ।
प्रायश्चित्तार्द्ध मर्हन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥६

अस्सी वर्ष का वृद्ध, ग्यारह से ऊपर और सोलह वर्ष से न्यून अवस्था का बाल, स्त्री और रोगी को आधा प्रायश्चित्त देना चाहिये ॥

न्यूनैकादश वर्षस्य पंच वर्षाधिकस्य च ।
चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ७

ग्यारह वर्ष से न्यून और पांच वर्ष से अधिक अवस्था वाले की शुद्धि के लिये गुरु अर्थात् पिता अथवा कोई मित्र प्रायश्चित्त करे ।

विधिः ।

सर्व पापेषु सर्वेषां व्रतानां विधिपूर्वकम् ।
ग्रहणं संप्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ते चिकीर्षिते ॥
दिनान्ते नख रोमादीन् प्रवाप्य स्नानमा चरेत् ।

भस्म गोमय मृद्वारि पंच गव्यादि कल्पितैः ॥
मलापकर्षणं कार्यं वाह्य शौचोपसिद्धये ।
दन्तधावन पूर्वेण पंच गव्येन संयुतम् ॥
व्रतं निशामुखे ग्राह्यं वहिस्तारक दर्शने ।
आचम्यातः परं मौनी ध्यायन् दुष्कृतमात्मनः ॥
मनः संतापनं तीव्रमुद् वहेच्छोक मन्ततः ॥ वसिष्ठः

पापों के प्रायश्चित्त करने की इच्छा हो तो उसकी विधि यह है कि दिन के अन्त में नख तथा रोमों को कटवा कर भस्म गोवर मट्टी और पंच गव्य आदि स्नान कर वाह्य शुद्धि करे और दंतधावन कर पंच गव्य पीवे । सायंकाल में जब तारे दीखें तो व्रत धारण करे आचमन करके मौन होकर अपने आप का ध्यान करे और मन से पश्चात्ताप करे ॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा वहुश्रुतः ।
केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥
यम ७६ ।

राजा हो वा राज पुत्र हो, अथवा विद्वान् ब्राह्मण हो सब वाल कटा कर प्रायश्चित्त करें ॥

केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रत मादिशेत् ॥
यम ५७

यदि केश न कटवाना चाहे तो दुगना व्रत करे ॥

* स्त्री और केश वपन *

नस्त्रीवपनं कार्यं ॥ यम० श्लो० ५५

परन्तु स्त्रियों के केश नहीं कटवाने चाहियें ॥

एवं बौधायन स्त्रियाः केश वपन वर्ज्यम्

स्त्रियें बिना क्षौर कराए व्रत करें ॥

इन व्रतों अथवा नियमों को कौन नियत करे ? इसका उत्तर शास्त्रों ने दिया है कि पंचायत ॥

* प्रायश्चित्ती और पंचायत *

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य दैवात्पूर्व कृतेन वा ।
न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥

मनुः ११ । ४७

जो किसी कारण से प्रायश्चित्त के योग्य हो जावे, वह बिना प्रायश्चित्त किये किसी श्रेष्ठ से संसर्ग न करे ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा वेद विद्भ्यो निवेदयेत् ॥

पराशर ८ । ६

वेद वेदांग विदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ।
स्वकर्मरत विप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥

परा० ८ । २

पाप करके छुपावे नहीं क्योंकि छुपाया हुआ पाप बढ़ता है। पाप छोटा हो वा बड़ा वेदवेत्ता, धर्म शास्त्राभिज्ञ ब्राह्मणों के संमुख प्रकट करदे।

सभा के लक्षण।

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्य परायणः।
मृदुरार्ज्जव संपन्नः शुद्धिं गच्छेत्मानवः॥

परा० ८।८

जब कोई पाप हो जाय तो लज्जा युक्त हो कर और सत्य परायण हो सरलता से शुद्धि का प्रयत्न करे॥

निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्या शंसने तथा।
धर्मं वा यदि वा धर्मं परिषत् प्राह तद् भवेत्॥

वृ० परा० ६।७२

शुद्धि में व्यवहार में तथा व्रत के बतलाने में सभा (पंचायत) जिस को धर्म वा अधर्म करार दे वही धर्म अथवा अधर्म होता है॥

अतः—

प्रविश्य परिषदन्ते वै सभ्यानामग्रतः स्थितः।
यथा कृतं च यत्पापं तथैव विनिवेदयेत्॥

वृ० परा० ६।७३

सभा में जाकर सभासदों के संमुख अपने पाप को यथा तथा प्रकट कर दे॥

परिषद् दशावरा प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेद पारगैः ।
सा यद् ब्रूयात्स धर्मः स्यात् स्वयंभू रित्य कल्पयत्
वेद शास्त्र विदो विप्रा ब्रूयुः सप्त पंच वा ।
त्रयो वापि सधर्मः स्यादेको वाऽध्यात्म वित्तमः
संयमं नियमं वापि उपवासादिकं च यत् ।
तद् गिरा परिपूर्णास्यान्निष्कृति र्व्यावहारिकी ।

बृहन्० पारा० अ० ६

दस वेदवेत्ता ब्राह्मण जिस में हों उसका नाम सभा है। वेदादि शास्त्र के जानने वाले सात, पांच, तीन अथवा अध्यात्म वित् एक ही जिसको धर्म कहे वह धर्म है।

पूर्वोक्त सभा जो संयम, नियम, अथवा उपवास आदि नियत करे उस से सम्पूर्ण व्यावहारिक शुद्धि करनी चाहिये।

वशिष्ठ कहता है:—

चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेद पारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ २ । ७

वेदवेत्ता चार अथवा तीन भी जो व्यवस्था दें वह धर्म है। और सहस्रों मूर्खों का कथन धर्म नहीं।

चातुर्विद्यं विकल्पी च अंगविद्धर्म पाठकः ।...

आश्रमस्थास्त्रयो मुख्यापर्षदेषां दशावरा ॥

वशिष्ट ३-२०

चार चारों वेदों के जानने वाले, एक मीमांसा का जानने वाला, एक अङ्गों (व्याकरणादि ६) का जानने वाला। एक धर्म शास्त्र का वेत्ता, और तीन तीनों वर्णों के मुखिया ये दश पुरुष जिसमें हों धर्म निर्णय के लिये वह सभा वा पंचायत है।

मनु कहता है:—

दशावरा परिषद् यं धर्म परि कल्पयेत् ।
त्र्यवरावापि वृत्तस्था तं धर्म न विचालयेत् १११
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्म पाठकः ।
त्रयश्चा श्रमिणः पूर्वे परिषत् स्याद् दशावरा ॥
एकोऽपि वेदाविद्धर्म यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञाना मुदितोऽयुतैः ॥

मनुः १२-११३

दस श्रेष्ठ विद्वान् जिसको धर्म कहैं, अथवा दस के अभाव में तीन भी सदाचारी जिसको धर्म कहैं उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिये ॥

वेद न्याय मीमांसा निरुक्त आदि के जानने वाले और तीन पूर्वाश्रमी ये दस जिसमें हों उसका नाम सभा है। वेद-

वैसा एक ब्राह्मण भी जिसको कहे वह धर्म है, परन्तु मूर्ख दस हज़ार का भी कहा हुआ धर्म नहीं।

अव्रतानाम मंत्राणां जातिमात्रोप जीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥

मनुः ११—११५

व्रतहीन, वेद मंत्रों से शून्य, केवल जातिमात्र के घमंडी ब्राह्मण आदि यदि सहस्रों भी एकत्र हों तो भी उसका नाम सभा (पंचायत) नहीं।

अतएव बृहत्पाराशर अध्याय ६ श्लो० ६८ में कहता है किः—

न सा वृद्धैर्न तरुणै र्न सुरूपै धनान्वितैः ।
त्रिभिरे केन परिपत्स्याद्धि द्वदाभि र्विदुषापि वा ॥

धर्म निर्णय में वृद्धों, जवानों, खूबसूरतों, तथा धनाढ्यों की सभा नहीं कहलाती। प्रत्युत् वहां तो विद्वान् तीन अथवा एकही काफी है।

* पंचायत का कर्त्तव्य *

देशं कालं वयः शक्तिं पापं चावेक्ष्य यत्नतः ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद् यत्रस्या दस्य निष्कृतिः

सभा को चाहिये कि वह लोभ मोह आदि से रहित होकर धर्म शास्त्रानुसार देशकालानुकूल प्रायश्चित्त नियत करे, अन्यथा उस पातक के भागी सभासद होते हैं।

आर्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः।
जानन्तोऽपि न यच्छन्ति ते वै यान्ति समं तु तैः

जो दुःखी और प्रायश्चित्त पूछने वाले को जान बूझ कर भी प्रायश्चित्त नहीं बताते वे भी उन पातकियों के तुल्य पापी होते हैं। परन्तु बिना यथार्थ ज्ञान के अन्यथा कहने में भी वैसा ही दोष है।

यं वदन्ति तमोभूताः मूर्खाः धर्ममतद्विदः।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनतु गच्छति ॥

मनुः १२—११५

धर्माधर्म के तत्व को न जानने वाले तमोगुण प्रधान मूर्ख जिसको प्रायश्चित्त बताते हैं। उसका पाप सौगुणा होकर उनको लगता है।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजाः नामधारकाः।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेताः नरकं ययुः ॥

परा० ८। ६८

जो केवल नामधारी (अर्थात् वेद विहीन) द्विज प्रायश्चित्त नियत करते हैं वे पापी हैं और सब के सब नरक में जाते हैं।

अज्ञात्वा धर्म शास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः।
प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्विषं पर्षदं व्रजेत् ॥

परा० ८।१४

जो सभा बिना धर्म शास्त्र के ज्ञान के प्रायश्चित्त देती है उस से प्रायश्चित्ती तो शुद्ध होजाता है परन्तु उसका पाप सभा को लगता है।

लोभान्मोहाद् भयान्मैत्र्यादपि कुर्युरनुग्रहम्।
ते मूढा नरकं यान्ति शतधा प्राप्तपातकाः॥

वृ० पा० ६। ८९

जो लोभ मोह भय अथवा मैत्रीभाव से पक्ष (रियायत) करते हैं वे मूढ नरक में जाते हैं, और उनका वह पाप सौगुना होकर लगता है।

शंखः—

तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्यायानुभाष्य पुनः पुनराचारं लभस्वेति। स यद्येव मप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्।

जब पातकी उक्त सभा के संमुख आवे तब सभा उस के दोषों को उसके गुरु, सम्बन्धी तथा राजा के सामने प्रकट करके उसे पातकी को कहे कि तुम इस प्रकार (जैसा सभा नियत करे) पुनः सदाचार में आजाओ! इस प्रायश्चित्त कथन पर भी यदि उसकी वृत्ति सदाचार में न लगे, अर्थात् यदि वह तदनुसार अपनी मर्यादा में न आवे तो उसको जाति बाह्य कर देना (छेक) चाहिये॥

* खान पान बंद *

निवर्त्तेरंश्च तस्मात्तु संभाषण सहासनं ।
दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा चैवहि लौकिकी ॥

मनुः ११ । १८४

ज्येष्ठता च निवर्त्तेत ज्येष्ठा वाप्यं च तद्धनम् ।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽपिवा॥

वह पतित जब तक प्रायश्चित्त न करले उससे बोलना साथ बैठना, दायभाग, तथा खान पान आदि लौकिक व्यवहार बंद कर देना चाहिये ॥

यदि बड़ा हो तो उसकी बड़ाई, और ज्येष्टांश, अर्थात् बड़ेपना का जो भाग दायाद्य से उसे मिलना था, तोड़ा जावे, और उस अंश को छोटा भाई लेवे जो गुणों से अधिक हो ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुंभमपां नवम् ।
तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये, जलाशये ॥

मनुः ११ । १८६

परन्तु पापानुसार प्रायश्चित्त कर लेने के उपरान्त सम्बन्धी लोग पवित्र जल से स्नान कर, जल से पूर्ण एक नवीन घटको उस के साथ जल में डाल देवे ॥

(यहां किसी २ ने प्रास्येयुः के अर्थ पीने के भी किये हैं अर्थात् उसके हाथ से जल ले कर आचमन करे ।

यह अर्थ शुद्धि के लिये अच्छा प्रतीत होता है॥ क्योंकि इस समय भी लोग शुद्ध हुए के हाथ से कुछ लेकर खाते हैं या आचमन लेते हैं ताकि उसको निश्चय हो जाय ॥

गौतम कहता है कि—

शात कुम्भ मपां पात्रं पुण्यतमात् ह्रदात् पूरयित्वा । स्रवन्तीभ्यो वा तत एनं अप उपस्पर्शयेयुः ॥

स्वर्ण के पात्र को किसी पवित्र तालाब अथवा नदी से भर कर उस से उस प्रायश्चित्ती को स्पर्श करावें । अर्थात् उससे आचमन मार्जन और स्नान करावें ॥

स त्वप्सुघटं प्रास्य प्रविश्य भुवनं स्वकम् ।
सर्वाणिं ज्ञाति कर्म्माणि यथा पूर्वं समाचरेत् ॥

मनुः ११ । १८७

वह शुद्ध हुआ २ मनुष्य उस घट को जल में फैंक कर अपने घर में जाए, और पूर्ववत् संपूर्ण ज्ञाति कर्मों को करे ॥

एत देव विधिं कुर्याद् योषित्सु पतिता स्वपि ।
वस्त्रान्न पानं देयं तु वसेयुश्च गृहान्तिके॥१८८॥

यही विधि पतित स्त्रियों में भी करनी चाहिये । परन्तु उनकी शुद्धि होने से प्रथम भी उनको अन्न जल देना चाहिये और गृह के समीप ही उनको रखना चाहिये ॥

पुनः शुद्ध हुओं से घृणा नहीं करनी चाहिये ।

एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थं किंचित्सहाचरेत् ।
कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥

मनुः ११

बिना प्रायश्चित्त के पतितों के साथ लेन देन नहीं करना चाहिये परन्तु प्रायश्चित्त करने के अनन्तर उनसे कमी भी घृणा नहीं करनी चाहिये ॥

* व्रतस्वरूपम् *

अब उन कृच्छ्र आदि व्रतों के स्वरूप बतलाए जाते हैं जिन से शुद्धि की जाती है ॥

प्राजापत्य ।

त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् ।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन् द्विजः ॥

मनुः ११ । २११

प्राजापत्य कृच्छ्र करने वाला तीन दिन प्रातःकाल और तीन दिन सायंकाल भोजन न करे । तीन दिन अयाचित अन्न से भोजन करे । और तीन दिन उपवास करे इस प्रकार द्वादश दिनका प्राजापत्य व्रत होता है ॥

इस में पराशर ने तो ग्रास संख्या भी लिखी है ।

सायं द्वात्रिंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा ।

अयाचिते चतुर्विंशत् परं चानशनं स्मृतम् ॥

सायंकाल के भोजन में बत्तीस ग्रास खावे। प्रातःकाल छब्बीस, इसके अनन्तर तीन दिन उपवास। अस्तु इत्यादि व्यवस्था को विस्तार भय से छोड़ कर केवल स्वरूप दर्शाये जायेंगे।

सांतपन कृच्छ्र।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एक रात्रो पवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ११२

गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी और कुशा का जल इन को एक दिन खावे और दूसरे दिन उपवास करे इसका नाम सांतपन कृच्छ्र है॥

महासांतपन।

पृथक् सांतपन द्रव्यैः षडहासोपवासकः।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम् ॥

या० प्रा ३१६

यदि इन पूर्वोक्त गोमूत्रादि से छैः छैः दिन व्यतीत करे अर्थात् एक दिन गोमूत्र से एक दिन गोमय से इत्यादि, और इसके पश्चात् छः दिन उपवास करे इसको महासांतपन कृच्छ्र कहा है।

अतिकृच्छ्र।

एकैकं ग्रास मश्नीयात्, त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।

त्र्यहं चोपवसे दन्त्यमति कृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥

मनुः ११-२१३

अतिकृच्छ्र करने वाला, तीन दिन सायं, तीन दिन प्रातः और तीन दिन अयाचित में एक एक ग्रास खावे। और तीन दिन उपवास करे।

तप्त कृच्छ्रः—

तप्त कृच्छ्रं चरन् विप्रो जलक्षीर घृतानिलान् ।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान् सकृत्स्नायी समाहितः ॥

तप्त कृच्छ्र का अनुष्ठान करने वाला विप्र समाहित चित्त होकर एक बार स्नान करे, तीन दिन उष्ण जल पीवे। तीन दिन गरम दूध पीवे, तीन दिन घी, और तीन दिन निराहार रहे।

पराक कृच्छ्रः—

यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाह मभोजनम् ।
पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्व पापापनोदनः २१५

स्वस्थ और समाहित चित्त से बारह दिन भोजन न करने का नाम पराक कृच्छ्र व्रत है और वह सब पापों को नष्ट करता है।

चान्द्रायणम्—

एकैकं ह्रास येत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत् ।
उपस्पृशंस्त्रि षवण मेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् २१६

तीन काल स्नान करता हुआ कृष्ण पक्ष में एक एक ग्रास घटावे और शुक्लपक्ष में एक एक ग्रास बढ़ावे इसको पिपीलिका चान्द्रायण व्रत कहते हैं ।

एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद् यवमध्यमे ।
शुक्लपक्षादि नियतश्चरंश्चान्द्रायणं व्रतम् ॥२१७॥

उपरोक्त ग्रास के घटाने आदि विधि का शुक्लपक्ष से आरम्भ करे इसको यव मध्याख्य चान्द्रायण कहा है । अर्थात् जैसे यव मध्य से मोटा होता है । एवं यवाकार ग्रास को शुक्लपक्ष से आरम्भ कर कृष्णपक्ष में घटा कर अमावस्या को उपवास करे ।

यति चान्द्रायण—

अष्टावष्टौ समश्नीयात् पिंडान् मध्यं दिने स्थिते ।
नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥

शुक्लपक्ष अथवा कृष्णपक्ष से आरम्भ कर एक मास पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर प्रतिदिन मध्यान्ह में आठ ग्रास खाना यति चान्द्रायण कहाता है ।

शिशु चान्द्रायण—

चतुरः प्रातरश्नीयात् पिंडान् विप्रः समाहितः ।
चतुरोऽस्तामिते सूर्ये शिशुश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥

प्रातःकाल चार ग्रास भोजन करे और सायंकाल में भी चार ग्रास भोजन करे इसका नाम शिशु चान्द्रायणव्रत है । इत्यादि अनेक साधन हैं जिनका देशकाल और पापानुसार प्रयोग कराना विद्वानों का कर्त्तव्य हैं । इति शम् ॥

परिशिष्ट ।

अनाय्यों को आर्य बनाने में

भारत के प्रसिद्ध विद्वान् (श्री० डाक्टर भण्डारकर एम० ए०
की सम्मति जो उन्होंने २९ अगस्त १९०९ को
पूना के व्याख्यान में प्रगट की ।

आर्यप्रभा ।

के

प्रथम वर्ष के २२ तथा २४ अंक से उद्धृत

डाक्टर साहिब के व्याख्यान में पुराणों इतिहासों तथा शिला लेखों के आधार से मुसलमानों के राज्य से पहिले (कलियुग में ही) समय में विदेशी या विजातीय अनार्यों को आर्य्य बनाने का विधान है और हम इस से यह परिणाम निकालते हैं कि जब आज से हज़ार वर्ष पहिले अनार्यों से आर्य बन जाते थे तो आज उन का इसी विधि से आर्य्य बनाना कोई पाप कर्म्म नहीं है। डाक्टर साहिब पुराणों के बहुत से उदाहरणों से अभीरशक, यवन, जातियों के आने और महाराजा अशोक के लेखों से ग्रीक लोगों का नाम योण (यवन) सिद्ध करते हुए इनका हिन्दु होना बताते हैं और इसके आगे महाराजा मिलिंद्र (जिस का राज्य पञ्जाब और काबुल में था) का पहिला नाम मिनिंडर लिखते हुए लंका के शिला लेख वा सिक्कों पर से पाली भाषा में लिखे शब्दों से बताते हुए सिद्ध करते हैं कि बहुत वाद विवाद के पीछे वह बुद्ध धर्मा-

नुयायी हुआ, यही नहीं, किन्तु काली के बहुत से शिला लेखों से यवनों का सिंहधैर्य धर्म्म आदि नाम रख हिन्दु होना सिद्ध होता है। और वहां एक लेख से यह भी निश्चय होता है कि सेतफरण का पुत्र हरफरण (वहालोफर्नेस) बहुतसा दान पुण्य करने से हिन्दु बनाया गया।

जुन्नर—के शिला लेख से चिटस और चंदान नामक यवनों को शुद्ध कर चित्र और चन्द्र बनाना सिद्ध होता है और इन के जीवन से आर्य्य पुरुषों से खान पान होना भी प्रतीत होता है।

नाशिक—(जिला) में एक शिला पर यह लेख है।

"सिधं ओतराहम दत्ता मिति यकस योण-कस धंम देव पुतस इन्द्राग्नि दतस धम्मात्मिना"

इस से प्रतीत होता है कि उत्तर (सरहद) से आए हुए यवन के पिता को संस्कार कर धर्म्मदेव और पुत्र को इन्द्राग्निदत्त बना कर आर्य बनाया, ऊपर के नामों से यह भी प्रतीत होता है सिन्ध के पार शुरू से ही शेखमहमद और शेख अबदुल्ला नहीं बसते थे।

नाशिक—के एक और शिला लेख से प्रसिद्ध क्षत्रप राज वंश के दिनीक, नहपान, क्षहरात, आदि राजाओं को शुद्ध किया गया और नहपान की कन्या से ऋषिभदत्त (उषवदात) नामी आर्य का विवाह हुआ इन राजाओं के नाम से २४ हजार

सिक्के अभी मिले हैं नहपान के जामाता ने एक बार ३०००० तीन लाख गौएं दान कर के दी थी और हर वर्ष लक्ष ब्राह्मण को भोजन कराया करता था। इन का राज्य ५० वर्ष तक नाशिक में रहा पीछे गौतम पुत्र ने इनको निकाल दिया, इन क्षत्रपों का एक वंश उज्जयिनी में चला गया वहाँ उस के १६७० पुरुष हुए इनका वहां दो सवा दो सौ वर्ष राज्य रहा, यह ईसा के संवत् से ३८९ वर्ष पहिले का समय है।

क्षत्रप शब्द का अर्थ—कदाचित् कोई कहे कि यह क्षत्रप लोग शुरू से ही आर्य थे इनको आर्य बनाया नहीं गया इसी लिये इन से गौएँ लेने और इनका भोजन करने में कोई दोष नहीं इस लिये हम क्षत्रप शब्द का अर्थ कर देते हैं।

क्षत्रप-शब्द साधारण दृष्टि से तो संस्कृतका प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में संस्कृत के सारे साहित्य (कोष व्याकरणादि) में यह शब्द कहीं नहीं पाया जाता हां क्षत्रप वा सत्रप यह शब्द फारसी भाषा के इतिहास का (Satrup) शब्द एक प्रतीत होता है जिसका अर्थ है राजाधिराजों के हाथ का पुरुष वा राज्याधिकारी वा प्रतिनिधि प्रतीत होता है आज कल जिस प्रकार आर्यावर्त के पुरुष चीन आदि सम्राटों की सेनाओं में जाकर प्रतिष्ठा पा उच्च अधिकार पा रहे हैं इसी प्रकार किसी समय विजातीय लोग आर्य सम्राटों के आधीन में रह कर अधिकार प्राप्त करते थे यहां तक कि दूसरे द्वीपों में राज प्रतिनिधि बन कर आया करते थे।

टालेमी—नामक प्रसिद्ध भूगोल ग्रन्थकार ने उज्जयिनी का वर्णन करते २ तियस्थ नीज़ और पुलुमाई तत्कालीन राजा-

ओं का नामांकित करता है पर उज्जयिनी के पुराने सिक्के और शिलाओं पर राजा का नाम चष्टन लिखा है कदाचित् यही तियस्थनीज होगा यह राजा क्षत्रप लोगों का आदि पुरुष हुआ है, यह नाम आर्यावर्तीय वा आर्य जाती का प्रतीत नहीं होता परन्तु इसके पुत्र का जयदाम और पोत्र का नाम रूद्रदाम था जिससे पाया जाता है कि इनका आधानाम जय तथा रुद्र हिन्दु होगया था और थोड़े काल के पीछे इसके वंश धरों के नाम रूद्र सिंह आदि हुए जो पूरे संस्कृत (आर्य) नाम हैं इनके इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि क्षत्रप लोग सबसे जल्दी आर्य बिरादरी में मिलाए गए अगले अङ्क में प्राचीन तुर्कों की शुद्धि का उल्लेख करेंगे ॥

(२ रा अंक)

हमने विगतांक में डाकटर साहिब के व्याख्यान से बहुत से पुरुषों तथा समुदायों को आर्य्य बनाना (विदेशी वा विधर्मी होने पर भी) दिखाया था आज उसके उत्तरार्ध में से कुछक दृष्टान्त ऐसे देते हैं जिन से यह सिद्ध हो कि मुसलमानों के राज्य के कुछ काल पहिले से विदेशी वा विजातीय अनार्यों को आर्य्य बनाया जाता था।

डाकटर साहिब फर्माते हैं नाशिक के एक और शिलालेख से सिद्ध होता है कि आर्य्य लोग शक जाति की स्त्रियों से खुले तौर पर विवाह कर लेते थे।

नाशिक—के एक और शिला लेख में लिखा है कि:—

" सिद्धं राज्ञः माढ़री पुत्रस्य शिवदत्ताभीर-

पुत्रस्य आभीरेस्वर सेनस्य संवत्सरे नवम ९ गिम्हपखे चौथे ४ दिवस त्रयोदश १३ एताय पुवय शकाग्निवर्मणः दुहित्रा गणपकस्य रेभिलस्य भार्यया गणकस्य विश्ववर्म मात्रा शकानिकया उपासिकयां विष्णुदत्तया गिलान भेषजार्थं अक्षयनीवी प्रयुक्ता”

इस लेख से प्रतीत होता है कि अग्नि वर्म की कन्या और विश्ववर्मा की माता " विष्णुदत्ता " ने रोगियों के औषध के लिए एक " अक्षयनीवी " (धर्मार्थ फण्ड) कायम किया था यह स्त्री शकनिका जाति की थी और इसका विवाह आर्य्य क्षत्रिय सें होने के सबब इसका पुत्र भी वर्मा कहलाया ऐसा प्रतीत होता है।

इस लेख में आभीर राजा का संवत् दिया है उस समय महीनों का प्रचार नहीं था किन्तु ऋतु के हिसाब से लोग वर्ष गिना करते थे आभीर लोगों का राज्य शक लोगों के पीछे हिन्दुस्तान में हुआ, आभीर लोग मध्य एशिया से हिन्दुस्तान में आए थे, विष्णुपुराण में इनको म्लेच्छों में गिना है वराहमिहिर भी इन्हें म्लेच्छ ही कहते हैं।

काठियावाड़-के गुंडा गांव के शिला लेख से भी आभीर राजाओं के राज्य का पता लगता है जिस समय अर्जुन श्री कृष्ण की पत्नी को ला रहा था उस समय इन ही लोगों ने

अर्जुन को लूटा था, यह लोग ही पीछे से अहीर बन गए और आज सुनारों तर्खाणों ग्वालों और ब्राह्मणों तक में पाए जाते हैं अर्थात् इस जाति के मनुष्यों ने अपने आप को म्लेच्छ वर्ग से निकाल कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्ण के पद को प्राप्त कर लिया, इसमें बहुत से लोग शूद्र होने पर भी जनेऊ डालते हैं पूना के सुनार अहीर जनेऊ पहिरते हैं खान देश के अहीर नहीं पहिरते कुछ काल से इन में इस बात से विरोध भी हो रहा है।

तुर्क हिन्दु बन गये—हिन्दुस्तान की उत्तर ओर तुर्क लोगों का राज्य था जिसको राजतरंगणि नामक पुस्तक में "तुरुष्क" या कुषण के नाम से लिखा है इसी वंश का हिमकाडफिस–नाम का एक राजा हिन्दू होकर शैव बन गया था यह मसीह की दूसरी वा तीसरी सदी में राज्य करता था इनके विशेषणों में "राजाधिराजस्य सर्व लोकैकेश्वरस्य माहेश्वरस्य"।

लिखा है, इसका नाम हिन्दुओं का सा नहीं है परन्तु यह पक्का शैव हिन्दु था इसके सिक्कों पर एक तरफ तुर्की टोपी और दूसरी तरफ नन्दी बैल तथा त्रिशूल हस्त एक पुरुष (शिव) की तस्वीर है जिस से सिद्ध है कि यह राजा तुर्कों के वंश में पैदा होकर भी हिन्दु होगया॥

दूसरे देशों के आये हुए लोग ब्राह्मण भी बन जाते थे

मगलोक ब्राह्मण होगये।

इस के बहुत से उदाहरणों में से एक " मग " जाति के लोगों का है, इन लोगों ने पहिले पहिल राजपूताना, मारवाड़, बङ्गाल तथा संयुक्त प्रान्त में बसती की थी, शालिवाहन के १०२८ शके के एक शिला लेख से (जो नीचे दिया जाता है)।

देवोजीया त्रिलोकी मणिरयमरूणो यन्निवासेन पुण्यः, शाकद्वीपस्सदुग्धाम्बुनिधि वलयितो यत्र विप्रा मगाख्याः।

वंशस्तद्द्विजानां भ्रमि लिखित तनोर्भास्वतः स्वाङ्गामुक्तः, शाम्बो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति ॥ १ ॥

सिद्ध होता है कि शाकद्वीप में मग लोक रहते थे वहां से शाम्ब (साम्ब) उन्हें यहां लाया इस वंश में छः पुरुष प्रसिद्ध कवि थे, इसका कुछ वर्णन भविष्य पुराण में भी मिलता है शाम्ब ने चन्द्रभागा (चिनाव) नदी के तट पर एक मन्दिर बनवाया उस समय ब्राह्मणलोक देवपूजन को निन्दनीय कर्म समझते थे इस लिये शाम्ब को कोई पुजारी न मिला और उसने शाकद्वीप से आये हुए मग जाति के लोगों को पुजारी बना दिया। मुलतान के निकट जो सुवर्ण का भारी मन्दिर था जिसे पिछली सदी में मुसलमानों ने तोड़ फोड़

दिया प्रतीत होता है यह वही मन्दिर है जिसे शाम्ब ने बनाया था।

देवस्थापन में मगों का अधिकार

शनैः २ इनका देवपूजन में यहां तक अधिकार बढ़ा कि वराह मिहर से पण्डितों ने भी इन की बाबत लिखा है कि:—

विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्॥

विष्णु की मूर्त्ति की स्थापना भागवत् लोगों के हाथ से और सूर्य देवता की मग लोगों के हाथ से करानी चाहिये।

मग लोग कौन थे?

कदाचित् लोगों को मग लोगों की जाति सम्बन्ध में संदेह हो इस लिये हम बतला देते हैं कि हिन्दुस्तान के मग और पर्शिया के मगी (magi) एक ही हैं पर्शियों के धर्म्म पुस्तक की भाषा भी वेद की भाषा से मिलती है और "मित्र" आदि पूज्य देवता भी "मग" और "मगी" लोगों के एक से ही हैं यह लोग उधर सीरिया, एशिया मायनर, और रोम तक फैले हुए हैं और इधर हिन्दुस्तान तक।

पहिले पहिल यह लोग एक सर्प की डोरी गले में डाला करते थे परन्तु ज्योंही इन्हों ने ब्राह्मण पदवी प्राप्त की त्योंही उसे त्याग जनेऊ (यज्ञोपवीत), पहिरना आर–

म्भ कर दिया, इसका भी विशेष वर्णन भविष्य पुराण में ही मिलता है।

हूण लोगों का हिन्दु होना

ईसा के पांचवें शतक में हूण लोग हिन्दुस्तान में आये और कुछ काल बाद इस कुल के नर वीरों ने भारत के कई भागों का राज्य प्राप्त किया शिला लेखों से तोरमाण तथा मिहरकुल दो राजाओं का वर्णन अब तक मिलता है।

छत्तीसगढ़-के राजा कर्णदेव ने एक हूण कन्या से विवाह किया था और राजपूतों की बहुत सी जातियों में एक हूण जाति भी है इन सब घटनाओं से पाया जाता है कि हूण लोग आर्य्यों ने आर्य बना लिये थे।

गुजर लोग क्षत्रिय बन गए

इतिहास में जिस प्रकार आभीर, हूण, शक, यवन वा तुर्क आदि का हिन्दु समाज में मिल कर हिन्दू संस्कारों को धार हिन्दू बनना सिद्ध होता है इसी प्रकार गुजर लोगों का विदेश से यहां आकर हिन्दू बनना पाया जाता है पंजाब में गुजरात शहर और दक्षिण में गुजरात प्रान्त इन लोगों के बसाए हुए हैं संस्कृत के गुर्जर शब्द से गुजर बन गये "गुर्जरत्रा" से गुजरात प्राकृत शब्द बन गया "गुर्जरत्रा" का अर्थ गुर्जर [गुजर] लोगों को आश्रय देकर रक्षा करने वाला है शुरू २ में यह लोग उस स्थान में आकर आश्रय लिया करते थे, गुजरात प्रान्त का पहिला नाम "लाट" था लाटी भाषा वा लाटी रीति बड़ी प्रसिद्ध थी काव्य प्रकाशादि में इसका वर्णन

भी है मसीह की यारवीं सदी के पीछे इसका नाम गुजरात पड़ा, गुज्जर लोगों का भारत के भिन्न २ प्रान्त पर राज्य रहा, इस वंश के १ देव शक्ति, २ रामभट ३ रामभद्र, ४ भोज राजा५ महेन्द्रपाल, ६ महीपाल छः राजे थे, इनमें से कन्नौज के राजा महेन्द्र पाल, के वंश को उसके गुरु कविराज शेखर ने अपने बालरामायण में रघुवंश की शाखा मानकर इसको " रघुकुल चूड़ामणि " लिखा है परं वास्तव में यह विदेशी (म्लेच्छ) लोग थे, और इनकी जाति के बहुत लोग गुज्जर नाम से रशिया के अज़ाब समुद्र के किनारे अब तक बस रहे हैं।

गुजरों का चारों वर्णों में प्रवेश

जिस प्रकार अहीर लोग अपने २ कर्मो से हिन्दुओं की ब्राह्मण, सुनाकर, तखाण, आदि जातियों में प्रवेश कर गए इसी प्रकार गुज्जरों ने भी चारों वर्णों में स्थान प्राप्त किया, अर्थात्, राजपूतानादि में बहुत में गौड़ ब्राह्मण बने बहुत से गूज्जर, क्षत्रिय, लुहार, तखाण सुनार वा जाट आदि बन गए।

गुज्जर राजपूत—राजपूत वंशों में १ पडिहार, प्रमार किंवा परमार ३ चाहुवान (चौहाण) ४ सोलकी ऐसी जातियें हैं जिनका संस्कृत व्याकरण से अर्थ करना ऐसा ही है जैसा कुकुर का अर्थ " कौति वेद शब्दं करोति, इति " कुकुरो ब्रह्मा " हां इनमें से पडिहार शब्द कई स्थानों में गुज्जर शब्द का वाची तो आता है जिससे पाया जाता है कि

और वर्णों में मिलने की तरह गुज्जरों ने राजपूत वंश में भी प्रवेश कर लिया ।

इत्यादि लौकिक इतिहासों से सिद्ध होता है कि आर्य लोग शुरू से कर्म की प्रधानता को मुख्य रखकर न केवल अपने पतित भाइयों को शुद्ध कर अपना सा बना लेते थे किन्तु इतरों को भी अपने प्रभाव में लाकर अपना बना लेते थे, समझदार आर्यों का अब भी यह विचार है कि इस जाति हितैषी अपने पूर्वजों के सनातन धर्म्म को जो परम्परा से चला आता है अब भी इसको विधि पूर्वक स्वच्छता से निबाहे जाना चाहिये ॥
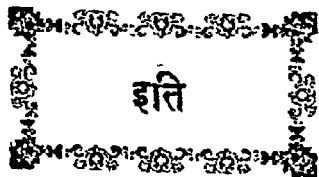
अपील

आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब और उसके आधीन आर्य समाजों ने पतित उधार का कार्य आरम्भ किया हुआ है, और सभाने यह निश्चय किया है कि इस उद्देश के लिये एक लाख की अपील कीजावे, यदि आप को उन सब प्रमाणों से जो इस ग्रन्थ में दिये गये हैं, निश्चय हो कि पतित उधार का कार्य धर्म और जाति के हित के लिये है तो इस शुभ कार्य में सहायतादें और अपना धन इस पता से भेजें—

हंसराज

प्रधान—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा,
पंजाब सिन्ध बलोचिस्तान लाहौर ।

बनाते हुए, और अदानियों को पछाड़ते हुए आगे बढ़ें।

मिमी हि श्लोकं मास्ये पर्जन्य इवततनः।
गायगायत्र मुक्थ्यम् ॥ ऋ० १-३८-१४

हे विद्वन्! तू अपने मुख में वेद के स्तुति वचनों को भर-और मेघ के तुल्य सर्वत्र वर्षा दे। गाने योग्य गायत्री छन्द वाले स्तोत्रों को गा, और दूसरों से गवा॥

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्रायचार्यायचस्वायचारणाय

यजुः २६-२

जैसे मैं इस कल्याण करने वाली वाणी को सम्पूर्ण के लिये उपदेश करता हूं, वैसे ही तुम भी ब्राह्मण, ... वैश्य, शूद्र तथा अपने और पराये को उपदेश करो।

...ेद ... का सब को अधिकार है।

वियन्ति नो चं विद्विष्यते मिथः
...वोगृह संज्ञान ... : ॥

...३-२०-४

...से विद्वान् ... ...ग नहीं होते